शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 10 अंक : 10 1 मई, 2018

(ज्येष्ठ (प्र.), विक्रम संवत् 2075)

संस्थापक
स्व. मुकुन्द राव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
सन्तोष पाण्डेय

❖

सह सम्पादक
विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ❑ भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल ❑ नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी : 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा
चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

प्राथमिक शिक्षा प्रासंगिकता के आईने से ❑ डॉ. ऋतु सारस्वत

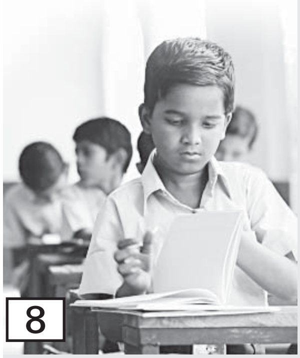

8वीं तक बच्चों को फेल न करने की नीति पर विश्लेषण सार्वजनिक मंच पर करने की आवश्यकता है क्योंकि इसका संबंध प्रत्यक्ष तौर पर देश के भावी निर्माणकर्त्ताओं से जुड़ा हुआ है। 1986 की नई शिक्षा नीति में, प्राथमिक शिक्षा में बच्चों को फेल न करने की नीति के समावेश का कारण, स्कूल से बच्चों का असमय छोड़ देने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण करना था। आठवीं तक फेल न करने की नीति पर पहली बार प्रश्न 2012 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति में उठा था, तब दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार और हरियाणा जैसे राज्यों द्वारा इस नीति पर पुनर्विचार करने की माँग की गई।

अनुक्रम

4.	शिक्षा की चुनौतियाँ	- सन्तोष पाण्डेय
6.	शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता : एक विश्लेषण	- प्रो. मधुर मोहन रंगा
12.	Thinking for New Education Policy	- Dr. TS Girishkumar
14.	Understanding Value based Education	- Prof. Lipi Ghosh
17.	भारतीय शिक्षा की पुनर्स्थापना	- डॉ. राघव प्रकाश
19.	शिक्षा में सत्याग्रह	- नंदकिशोर आचार्य
21.	साख के संकट से जूझती शिक्षा	- जगमोहन सिंह राजपूत
23.	कन्या भ्रूण हत्या; अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न	- डॉ. अनीता मोदी
26.	महामहोपाध्याय डॉ.पाँडुरंग वामन काणे	- विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
28.	युवा आदर्श : स्वामी विवेकानन्द	- उमेश कुमार चौरसिया
32.	गुरु वंदन (कुटुम्ब प्रबोधन-द्वितीय अध्याय)	- हनुमान सिंह राठौड़
35.	साक्षात्कार	- जगदीश प्रसाद सिंघल
38.	गतिविधि	

Perception about Education in Emerging Indian Society

❑ Prof. Prakash Chandra Agarwal

Quality education needs quality teachers. In our education system on first hand we have high shortage of teachers and hence not meeting at all the Pupil Teacher Ratio (PTR) as envisaged by different commissions like Mudaliyar commission, Kothari commission and National Policies on Education (1968 and 1986). The distribution is skewed one. On the other hand even in available teachers we rarely see quality teachers. Most of the teachers are without teaching attitude and aptitude. So the fate of school education can be visualized easily.

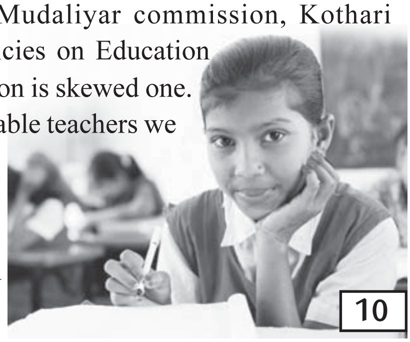

शिक्षा की चुनौतियाँ

❑ सन्तोष पाण्डेय

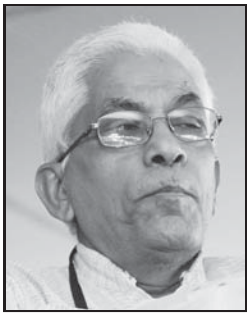

समाज में यह धारणा प्रबल हो रही है कि सरकार सभी को शिक्षा प्रदान करने योग्य साधन जुटाने में समर्थ नहीं है। इस दुष्प्रचारित धारणा से निजी शिक्षण संस्थाओं को प्रेरित किया जा रहा है। शिक्षा मूलतः राज्य/देश की सरकार की जिम्मेदारी है। वह इस दायित्व से बच नहीं सकती है। केन्द्र व राज्य सरकारें शिक्षा पर व्यय का प्रचार तो खूब करती हैं परन्तु आज भी सत्य है कि देश की राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत भी शिक्षा पर खर्च नहीं हो रहा है। केन्द्र व राज्यों में एकमत का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इससे राजकीय शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता में जन साधारण का विश्वास डिगा है। जिसका भरपूर उपयोग निजी शिक्षा प्रदाताओं ने किया है। शिक्षा को भारतीय संस्कृति में सर्वोत्तम सेवा माना गया है।

संपादकीय

देश की वर्तमान सरकार ने कार्य प्रारम्भ करते ही सर्वप्रथम किये जाने वाले कार्यों में राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा की तथा बदली परिस्थितियों के अनुरूप इसे पुनः निर्धारित करने का कार्य प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में शिक्षा की अनेक समस्याओं और कमजोरियों को चिह्नित किया गया एवं देशभर के शिक्षाविदों, शिक्षकों, अभिभावकों व शिक्षा में भागीदारी निबाहने वाले सभी संबद्ध पक्षों से विचार विमर्श कर एक व्यापक दृष्टिपत्र प्रस्तुत किया गया तथा पुनः सुझाव आमंत्रित कर इसे एक समिति को सौंपा गया। इसी के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप तैयार किया जाना था। समिति ने राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक विचार-विमर्श से उभरे सुझावों को अस्वीकार कर ऐसा प्रारूप प्रस्तुत किया जिसे जनमानस स्वीकार करने को तैयार नहीं था। संशोधित एवं परिवर्द्धित प्रारूप प्रस्तुत करने के लिये पुनः एक नई समिति को सौंपा गया। इसकी प्रगति को देखते हुए विश्वास था कि मार्च तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप प्राप्त हो सकेगा तथा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर निर्णय हो सकेगा। यह भी अनेकानेक कारणों से संभव नहीं हो पाया है। नई शिक्षा नीति के अभाव में शिक्षा की चुनौतियाँ बढ़ती जा रही हैं। शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं की दुरावस्था गंभीर चिंता का विषय बन रही है। 'सबका साथ, सबका विकास' के ध्येय से विकासमान भारत ने जहाँ आर्थिक वृद्धि की वहीं दूसरी ओर सामाजिक संतुष्टि व खुशहाली की दृष्टि से उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहा है। यह भी सत्य है कि शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में सफलता की बड़ी छलांग लगाये बिना श्रेष्ठ नागरिकों के देश का स्वप्न पूरा नहीं हो पायेगा। स्वास्थ्य की दिशा में तो 'आयुष्मान भारत' कार्यक्रम के माध्यम से बड़ी छलांग लगाई है। शिक्षा के क्षेत्र में भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से बड़े परिवर्तन लाने के प्रयास प्रतीक्षित हैं। इस दृष्टि से भावी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा की अनेक चुनौतियों का सामना करने के उपाय लक्षित किये जाने अपेक्षित हैं।

समाज के समक्ष आज सबसे बड़ी चुनौती नैतिक (Moral and ethical) व सामाजिक मूल्यों में भारी गिरावट की है। समय-समय पर गठित सभी शिक्षा आयोग, समितियों व नीतियों में सर्वाधिक बल मूल्य आधारित शिक्षा पर दिया गया है शिक्षा क्षेत्र में इतने तीव्र आधारभूत परिवर्तन हुये हैं कि शिक्षा व्यवस्था मूल्य आधारित शिक्षा को प्रभावी बनाने में समर्थ नहीं हो पायी है। समाज जिन मूल्यों को आदर्शों के रूप में स्वीकार करता है, उन्हें शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण व अधिगम की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व में समाहित

करता है। यह प्रक्रिया सतत् एवं अतिमंद गति से चलते हुये व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन जाती है। सहकारिता व सहयोग, पारस्परिक विश्वास, आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता, विनम्रता, मृदु व्यवहार, समर्पण, क्षमाशीलता, मित्रता, कृतज्ञता, ईमानदारी आशावादिता, अखण्डता , धैर्य, सम्मानभाव, त्याग, व्यापक दृष्टिकोण, सत्य के प्रति आग्रह व अहिंसक आचरण आदि मानवीय मूल्यों को शैक्षिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाना आवश्यक है। नैतिक व सामाजिक मूल्यों के साथ-साथ राष्ट्र के प्रति अगाध श्रद्धा, गौरव व प्रेम का भाव प्रेरित करने वाली शिक्षा व्यवस्था का सृजन राष्ट्रीय शिक्षा नीति का अभीष्ट होना चाहिये। वर्तमान में व्यक्ति पर सामाजिक नियंत्रण शिथिल होने का सबसे बड़ा कारण मौजूदा शैक्षिक व्यवस्था द्वारा वैयक्तिक स्वतंत्रता, व्यक्तिवाद को प्रेरित करना है। जबकि राष्ट्रीय भावना को प्रेरित करना राष्ट्रीय शिक्षा नीति का लक्ष्य होना चाहिये। ऐसा करके ही राष्ट्रीय गौरव, आत्म सम्मान तथा आत्मनिर्भरता को पाया जा सकता है। भारतीय जीवन दर्शन, संस्कृति व सांस्कृतिक मूल्यों को प्रेरित व प्रोत्साहित करके ही देश में सांस्कृतिक एकता, समरसता व सद्भाव को प्राप्त किया जा सकता है।

देश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार व नये ज्ञान के सृजन में वहाँ बोली व समझी जाने वाली भाषा का भारी योग होता है। जिस भाषा में जनसाधारण संवाद करता है, सोचता है उन स्थितियों को समझने का प्रयास करता है, उसी भाषा में पढ़-लिखकर नये ज्ञान का सृजन अपेक्षाकृत सरल होता है। विदेशी भाषाओं का ज्ञान व दक्षता विश्व में उत्पन्न व उपलब्ध ज्ञान को देश में लाने में सहायक हो सकता है, परन्तु नवाचारों, नवोन्मेषों को प्रेरित नहीं कर सकता है। एतदर्थ राष्ट्रीय शिक्षा नीति में मातृ भाषाओं को शिक्षा का माध्यम आवश्यक करने की व्यवस्था होनी चाहिये। भारत को युवाओं का देश होने का गौरव प्राप्त है। अधिसंख्यक जनसंख्या 14-60 वर्ष की है, प्रति वर्ष बड़ी संख्या में रोजगार प्राप्ति के आकांक्षी इसमें सम्मिलित होते हैं। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य तो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र निर्माण है, परन्तु बढ़ते मानवीय संसाधनों को उपयुक्त व समुचित आजीविका उपलब्ध कराना भी उतना ही आवश्यक है। शिक्षा इस प्रकार की हो कि प्रत्येक व्यक्ति क्षमता व योग्यतानुसार आजीविका प्राप्त कर सके। परन्तु सदियों की दासता ने सामान्य व्यक्तियों का मनोबल इस सीमा तक तोड़ा है कि वह स्वरोजगार के स्थान पर सुरक्षित नौकरी को ही जीवन का उद्देश्य व सफलता मानता है। मन के अचेतन में व्याप्त आर्थिक असुरक्षा का भाव उसे स्वरोजगार की जोखिम उठाने से रोकता है। कोई भी समाज सभी को नौकरी प्रदान नहीं कर सकता है। समाज में नौकरी को ही रोजगार मानने की धारणा में परिवर्तन लाये बिना रोजगार सृजित करने वालों को प्रेरित नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के माध्यम से ही स्वावलंबन व स्वाभिमान की भावना को पुष्ट करना संभव है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्वरोजगार, उद्यम, नवोन्मेष को प्रेरित करने वाले उपाय होने चाहिये। इसे दृष्टिगत कर यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञानार्जन के साथ-साथ किसी न किसी उत्पादक कार्य में योग देने योग्य बनाया जाय। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य तो आत्मविकास ही रहे, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में रोजगार सृजन का माध्यम बनाना भी अपेक्षित है।

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षण पद्धति, पाठयक्रम तथा पाठ्य सहगामी गतिविधियों का बड़ा महत्त्व है। सामाजिक व सांस्कृतिक उद्देश्यों की प्राप्ति पाठयक्रम रचना द्वारा ही संभव है। संपूर्ण देश में एक समान पाठ्यक्रम, सभी को एक समान अवसर उपलब्ध कराकर राष्ट्रीयता की भावना व सांस्कृतिक एकता को पुष्ट कर सकता है, परन्तु यह भारत जैसे विशाल क्षेत्र व वैविध्यपूर्ण संस्कृति वाले देश को क्षेत्रीय विशेषताओं, क्षमताओं और संभावनाओं के पूर्ण उपयोग से वंचित कर सकता है। पाठ्यक्रम रचना इस प्रकार की हो कि वह एकता व अखण्डता को पुष्ट करते हुये, क्षेत्रीय व स्थानीय प्रतिभाओं व संभावनाओं का पूर्ण दोहन कर सके। इस हेतु शिक्षा में नवाचारों व नये प्रयोगों की सुविधा होनी चाहिये। प्राथमिक व माध्यमिक स्तर की शिक्षा में आज शिक्षण स्तर को उचित नहीं कहा जा सकता है। यह अनेक सैद्धान्तिक व व्यावहारिक कठिनाइयों से ग्रस्त है। शिक्षण के क्षेत्र में हुई नई विधाओं में शिक्षकों को पारंगत करना आवश्यक है। वर्तमान शिक्षण-प्रशिक्षण व्यवस्था में व्यापक सुधार अपेक्षित है।

समाज में यह धारणा प्रबल हो रही है कि सरकार सभी को शिक्षा प्रदान करने योग्य साधन जुटाने में समर्थ नहीं है। इस दुष्प्रचारित धारणा से निजी शिक्षण संस्थाओं को प्रेरित किया जा रहा है। शिक्षा मूलत: राज्य/देश की सरकार की जिम्मेदारी है। वह इस दायित्व से बच नहीं सकती है। केन्द्र व राज्य सरकारें शिक्षा पर व्यय का प्रचार तो खूब करती हैं परन्तु आज भी सत्य है कि देश की राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत भी शिक्षा पर खर्च नहीं हो रहा है। केन्द्र व राज्यों में एकमत का अभाव दृष्टिगोचर होता है। इससे राजकीय शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता में जन साधारण का विश्वास डिगा है। जिसका भरपूर उपयोग निजी शिक्षा प्रदाताओं ने किया है। शिक्षा को भारतीय संस्कृति में सर्वोत्तम सेवा माना गया है। परन्तु आज यह अक्षय लाभ प्रदान करने वाला शिक्षा उद्योग बन गया है, जिसमें शिक्षकों, छात्रों, अभिभावकों का भारी शोषण हो रहा है। निरन्तर बढ़ती हुई फीस आज एक गंभीर समस्या बन चुकी है। शिक्षा नीति में इस ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

ये कतिपय महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं जिनका अविलम्ब समाधान अपेक्षित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में समयानुकूल परिवर्तन ही इनका निदान करने में सक्षम है। भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस प्रकार संयोजित की जाय कि वह व्यक्ति को आत्मविकास, आत्मनिर्भरता के अवसर प्रदान कर सके तो दूसरी ओर राष्ट्र के प्रति समर्पण, गौरव, निष्ठा को प्रेरित कर सके और शिक्षा आत्म बोध, राष्ट्र-बोध व विश्व-बोध के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हों। ❑

शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता : एक विश्लेषण

भारतीय शिक्षा तंत्र विश्व का सबसे बड़ा शिक्षा-प्रदाता तंत्र है परंतु अन्य विकसित राष्ट्रों में स्वायत्तता के कारण शैक्षणिक गुणवत्ता के मापदण्ड निर्धारित किये हैं, इन देशों का प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा तंत्र सरकार चलाती है व आर्थिक विषमता, सामाजिक विषमता, शैक्षिक विषमता किसी मेधावी छात्र की विकास यात्रा में बाधक नहीं बनती। हमारे यहाँ आर्थिक सामाजिक व शैक्षिक विषमता सबसे अधिक है अतः स्वायत्तता का निर्धारण सिर्फ नैक के स्कोर के आधार पर न करके संस्थागत परिस्थितियों के आधार पर होना चाहिये।

❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

राष्ट्र के समग्र विकास हेतु विभिन्न योजनाओं, परियोजनाओं, नीतियों व दृष्टि पत्र की आवश्यकता के साथ-साथ इनका सतत् मूल्यांकन आवश्यक है, इसी से परिष्कृत परिणाम प्राप्त होते हैं। उपर्युक्त आयामों की सफलता के लिए कार्ययोजना व उसका निर्धारित समय पर क्रियान्वयन आवश्यक है, सम्पूर्ण व समग्र विकास के मूल में शिक्षा ही सक्षम आधार है, इसी आधार पर अवलम्बित होकर सर्वांगीण विकास का बीज सुषुप्तावस्था से, जाग्रत होकर विकास को जन्म देता है। इसी उद्देश्य से नीतियों व योजनाओं का निर्माण होता है। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय की 21 मार्च 2015 को सम्पन्न बैठक में देश के शिक्षाविदों ने अपने विचार प्रस्तुत किये। शैक्षिक पारिस्थितिक तंत्र (Educational Ecosystem) के प्रत्येक स्तर पर चर्चा की गई जैसे- शिक्षा में गुणवत्ता के लिए अभिशासन में सुधार, संस्थाओं की स्वायत्तता, संस्थागत स्तर पर बहुआयामी नियामक तंत्र का विकास, स्वायत्तता, संस्थागत उत्कृष्टता, कौशल विकास, सामाजिक परिवर्तन, श्रेष्ठ अध्यापक तैयार करना आदि विषय प्रमुख थे। इस आलेख में नई शिक्षा नीति व स्वायत्तता के सन्दर्भ में समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत है। स्वायत्तता में गुणवत्तायुक्त शिक्षा व उत्कृष्टता के सवंर्धन का मूल-भूत तत्त्व निहित होता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु अकादमिक स्वायत्तता व उत्कृष्टता के लिए वित्तीय व प्रशासनिक स्वायत्तता होनी चाहिये। संस्थागत उत्कृष्टता हेतु संस्थागत स्तर पर स्वतंत्रता में भी स्वायत्तता की भावना है। नई शिक्षा नीति में इस विचार को आत्मसात कर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की अवधारणा को प्रतिपादित करने का संकल्प लिया है। भारत सरकार के राज पत्र, (असाधारण, भाग 3 खण्ड 4, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) अधिसूचना दिनांक 12 फरवरी 2018 के द्वारा महाविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान करने तथा स्वायत्त महाविद्यालयों में मानकों के पालन संबंधी उपाय, विनियम 2018 में विभिन्न प्रावधानों, पात्रता, शर्त, मूल विश्वविद्यालय की भूमिका आदि का वर्णन किया गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 60 उच्च शिक्षण संस्थाओं को अकादमिक उत्कृष्टता के कारण स्वायत्तता प्रदान की है। मानव संसाधन विकास मंत्री ने कहा कि शिक्षा क्षेत्र को अधिक उदार (Liberalized) बनाना व स्वायत्तता को गुणवत्ता से जोड़ना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है।

स्वायत्तता प्राप्त संस्थाओं में 52 विश्वविद्यालयों (5 केन्द्रीय, 21 राज्य, 24 डीम्ड, 02 प्राइवेट विश्वविद्यालय) को सम्मिलित किया है। केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली व हैदराबाद विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अंग्रेजी व विदेशी भाषा विश्वविद्यालय तेलंगाना। राज्य विश्वविद्यालय में प्रमुख हैं जादवपुर विश्वविद्यालय कोलकता, अलगप्पा विश्वविद्यालय कराईकुडी, तमिलनाडु, नलसार विधि विश्वविद्यालय तेलंगाना आदि। उल्लेखनीय है कि सभी के मापदण्ड का आधार राष्ट्रीय मूल्यांकन व प्रत्यायन परिषद् द्वारा निर्धारित स्कोर है। केन्द्रीय विश्वविद्यालय में यह 3.77 से 3.26, राज्य विश्वविद्यालय में 3.68 से 3.28, डीम्ड विश्वविद्यालय में 3.53 से 3.35, निजी विश्वविद्यालय में 3.26 से 3.39 रहा। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि मूल्यांकन का आधार शोध, नवाचार, शिक्षण व संसाधन, आन्तरिक गुणवत्ता, विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, पेटेन्ट, आधारभूत संरचना, ये सभी संस्थागत उत्कृष्टता के आवश्यक तत्त्व हैं। इनमें से कितने मापदण्ड हमारे राज्यों के विश्वविद्यालय पूरे करते हैं? अधिकतर उच्च शिक्षण संस्थाओं में आधारभूत ढाँचा, संस्थाओं के परिसर व शिक्षकों की कमी के साथ-साथ स्वायत्तता का भी अभाव है, इन सबके बाद भी नैक का

मूल्यांकन आवश्यक कर दिया गया है व स्वायत्तता निर्धारण का आधार भी नैक का स्कोर है। नैक के मूल्यांकन का आधार प्रत्येक राज्य के संस्थागत ढाँचे व आधारभूत संरचना के आधार पर होना चाहिये न कि पूर्व निर्धारित यांत्रिक प्रोफार्मा के आधार पर, जो कि आयातित विचार पर आधारित है न कि देशानुकूल परिस्थिति सापेक्ष। राज्य सापेक्ष व परिस्थिति सापेक्ष मानक मूल्यांकन का आधार होना चाहिये उसी के आधार पर उच्च शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता का निर्धारण होना चाहिये न कि नैक की ग्रेडिंग के आधार पर । अभी हाल ही में नेशनल इंस्टिट्यूशनल रैंकिंग फ्रेमवर्क (NIRF) ने इंडिया रैंकिंग्स जारी की है इनमें टॉप 10 विश्वविद्यालयों की सूची में लगातार दूसरे वर्ष भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलुरू है, जबकि जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली दूसरे तथा तीसरे पायदान पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय है, इनके अतिरिक्त देश की 10 टॉप अभियांत्रिकी संस्थाएँ हैं ।

हमारे देश में उच्च शिक्षा में वित्त पोषण, आधारभूत संरचना, आधुनिक शिक्षण, अधिगम व विभिन्न प्रकार के मापदण्डों में जमीन-आसमान का अंतर है। इस स्थिति में क्या आयातित मूल्यांकन पद्धति के आधार पर स्वायत्तता का निर्धारण कितना सार्थक होगा? यह चर्चा का विषय है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर देखें तो भारतीय परिवर्द्धित होते बालक के मन मस्तिष्क पर इसका प्रभाव निश्चित दृष्टिगोचर होता है। जब बालक यह पढ़ता है कि देश के 'टॉप 10' में हमारी संस्था नहीं है, तब वह अपने अभिभावकों को कोसेगा कि मुझे 'टॉप 10' उच्च शिक्षण संस्था में पढ़ने का अवसर क्यों नहीं मिल पाता है ? क्या मैं योग्य नहीं हूँ ? क्या मुझ में मेधा का अभाव है ? या मेरे माता-पिता की इतनी आय नहीं है कि वह मुझे 'टॉप 10' संस्था में पढ़ा सकें। मेरे विचार से स्वायत्तता को निर्धारण वहाँ के विद्यार्थियों के सतत् मूल्यांकन, उनकी क्षमता व संसाधनों के आधार पर हो व संस्था के परिणामों के आधार पर हो, जब ख्याति प्राप्त संस्था 'टॉप-मेरिट' के विद्यार्थियों को प्रवेश देगी तो उनका बौद्धिक स्तर भी अधिक होगा। अत: परीक्षा-परिणाम भी श्रेष्ठ होगा क्योंकि वहाँ आधुनिक सुविधाएँ व योग्य शिक्षक होंगे। जबकि 'टॉप-10' के अतिरिक्त संस्थाओं मे प्रवेश लेने वाला विद्यार्थी औसत व औसत से कम अंक प्राप्त करने वाला होगा, जबकि 'टॉप-10' के अतिरिक्त वहाँ का शिक्षक अनवरत प्रयास करके औसत अंक पर प्रवेश प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को स्थिति में उच्च श्रेणी के लायक बना देगा, आधुनिक सुविधाओं के अभाव के बावजूद भी उस स्थिति में उसी को श्रेष्ठ शिक्षक कहलाने का अधिकार होगा। अत: नई शिक्षा नीति में स्वायत्तता के मापदण्डों में परिवर्तन होना चाहिये। उच्च शिक्षण संस्थाओं को ज्यादा स्वायत्तता प्रदान करने के पीछे शिक्षा का स्तर बेहतर बनाने के उद्देश्य से मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने यह कदम उठाया है, यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि उनका स्तर अन्य शिक्षण संस्थाओं से उत्तम है तभी नैक का स्कोर अधिक है, इन्हें फिर अधिक स्वायत्तता देना इसी प्रकार है जैसे अधिक समृद्ध को और समृद्ध बनाना।

स्वायत्तता प्राप्त करना उच्च शिक्षण संस्थाओं की पुरानी लालसा है, यह कम प्रशासनिक हस्तक्षेप के सन्दर्भ में तो उचित है , परन्तु अधिक स्वायत्तता कहीं निरंकुशता (autocracy) को तो विकसित नहीं कर देगी ? यह विचारणीय प्रश्न है। मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा विश्वविद्यालय को स्वायत्तता प्रदान करने का निर्णय विश्वविद्यालय को स्वयं का पाठ्यक्रम खोलने, शुल्क निर्धारण करने से लेकर शिक्षकों के चयन, कर्मचारियों के वेतन निर्धारण करने तक का निर्णय विश्वविद्यालय प्रशासन के हाथों में होगा । नये पाठ्यक्रम या डिग्री के संबंध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 1956, 22(3) में देश में प्रचलित पाठ्यक्रमों व उपाधियों का वर्णन है उनके अतिरिक्त नये पाठ्यक्रमों के प्रारम्भ करने से पूर्व , आयोग की सहमति की आवश्यकता है । इस प्रावधान की यह मंशा रही होगी कि सम्पूर्ण देश के पाठ्यक्रमों व उपाधियों में एकरूपता हो परंतु अब नये प्रावधानों से भारत में विभिन्न प्रकार की डिग्रियाँ होंगी प्रत्येक विश्वविद्यालय स्वयं द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमों के आधार पर पाठ्यचर्चा निर्मित कर उपाधियाँ वितरित करेगा, जिससे उपाधियों की एकरूपता पर क्या असर पड़ेगा यह तो भविष्य ही बतायेगा। अत: भविष्य ही निर्धारित करेगा कि कौनसा प्रावधान समयानुकूल व देशानुकूल है। भारतीय शिक्षा तंत्र विश्व का सबसे बड़ा शिक्षा-प्रदाता तंत्र है परंतु अन्य विकसित राष्ट्रों में स्वायत्तता के कारण शैक्षणिक गुणवत्ता के मापदण्ड निर्धारित किये हैं, इन देशों का प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा तंत्र सरकार चलाती है व आर्थिक विषमता, सामाजिक विषमता, शैक्षिक विषमता किसी मेधावी छात्र की विकास यात्रा में बाधक नहीं बनती। हमारे यहाँ आर्थिक सामाजिक व शैक्षिक विषमता सबसे अधिक है अत: स्वायत्तता का निर्धारण सिर्फ नैक के स्कोर के आधार पर न करके संस्थागत परिस्थितियों के आधार पर होना चाहिये। अकादमिक, प्रशासनिक, आर्थिक स्वायत्तता स्वागत योग्य कदम है, यही आशा व विश्वास है कि इससे संस्थागत उत्कृष्टता के साथ -साथ गुणवत्तापूर्ण विकास भी होगा व भारत की प्रतिभा वैश्विक स्तर पर अपनी मेधा का परिचय देकर देश को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में स्थान दिलाने में कारगर होगी।❑

(विभागाध्यक्ष-पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर, छ.ग.)

प्राथमिक शिक्षा प्रासंगिकता के आईने से

8वीं तक बच्चों को फेल न करने की नीति पर विश्लेषण सार्वजनिक मंच पर करने की आवश्यकता है क्योंकि इसका संबंध प्रत्यक्ष तौर पर देश के भावी निर्माणकर्त्ताओं से जुड़ा हुआ है। 1986 की नई शिक्षा नीति में, प्राथमिक शिक्षा में बच्चों को फेल न करने की नीति के समावेश का कारण, स्कूल से बच्चों का असमय छोड़ देने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण करना था। आठवीं तक फेल न करने की नीति पर पहली बार प्रश्न 2012 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति में उठा था, तब दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार और हरियाणा जैसे राज्यों द्वारा इस नीति पर पुनर्विचार करने की माँग की गई।

❑ डॉ. ॠतु सारस्वत

देश के 23 राज्यों ने स्कूलों में पाँचवी एवं आठवीं कक्षा में छात्रों को अनुत्तीर्ण नहीं करने की नीति में संशोधन करने का समर्थन किया है। इनमें से आठ राज्यों ने इस नीति को पूरी तरह वापस लेने के पक्ष में राय जाहिर की है। वहीं आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, गोवा, महाराष्ट्र और तेलंगाना ने आरटीई अधिनियम 2009 के तहत् अनुत्तीर्ण नहीं करने की नीति को बनाए रखने की बात कही है। उल्लेखनीय है कि स्कूलों में अनुत्तीर्ण नहीं करने की नीति के विषय पर विचार करने के लिए 26 अक्टूबर 2015 को राजस्थान के शिक्षा मंत्री के नेतृत्व में एक उपसमिति का गठन किया गया था। इस समिति ने 6 से 14 वर्ष की उम्र के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार कानून के तहत इस नीति से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार किया था। अब शिक्षा का अधिकार कानून 2009 के प्रावधानों में संशोधन करने का निर्णय किया गया है ताकि पाँचवी एवं आठवीं कक्षा में नियमित परीक्षा आयोजित की जा सके। प्रस्तावित संशोधन के अनुसार अगर कोई बच्चा इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है तब उसे परिणाम घोषित होने के दो महीने के भीतर दोबारा परीक्षा देने का मौका मिलेगा। अगर छात्र दूसरे अवसर में भी अनुत्तीर्ण हो जाता है तब उपर्युक्त सरकार स्कूल को पाँचवी या आठवीं कक्षा या दोनों कक्षाओं में ऐसे छात्रों को रोकने की अनुमति दे सकती है। लेकिन किसी भी छात्र को स्कूल से नहीं निकाला जा सकेगा।

8वीं तक बच्चों को फेल न करने की नीति पर विश्लेषण सार्वजनिक मंच पर करने की आवश्यकता है क्योंकि इसका संबंध प्रत्यक्ष तौर पर देश के भावी निर्माणकर्त्ताओं से जुड़ा हुआ है। 1986 की नई शिक्षा नीति में, प्राथमिक शिक्षा में बच्चों को फेल न करने की नीति के समावेश का कारण, स्कूल से बच्चों का असमय छोड़ देने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण करना था। आठवीं तक फेल न करने की नीति पर पहली बार प्रश्न 2012 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति में उठा था, तब दिल्ली, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, बिहार और हरियाणा जैसे राज्यों द्वारा इस नीति पर पुनर्विचार करने की माँग की गई। इस समिति की सिफारिश के बाद 25

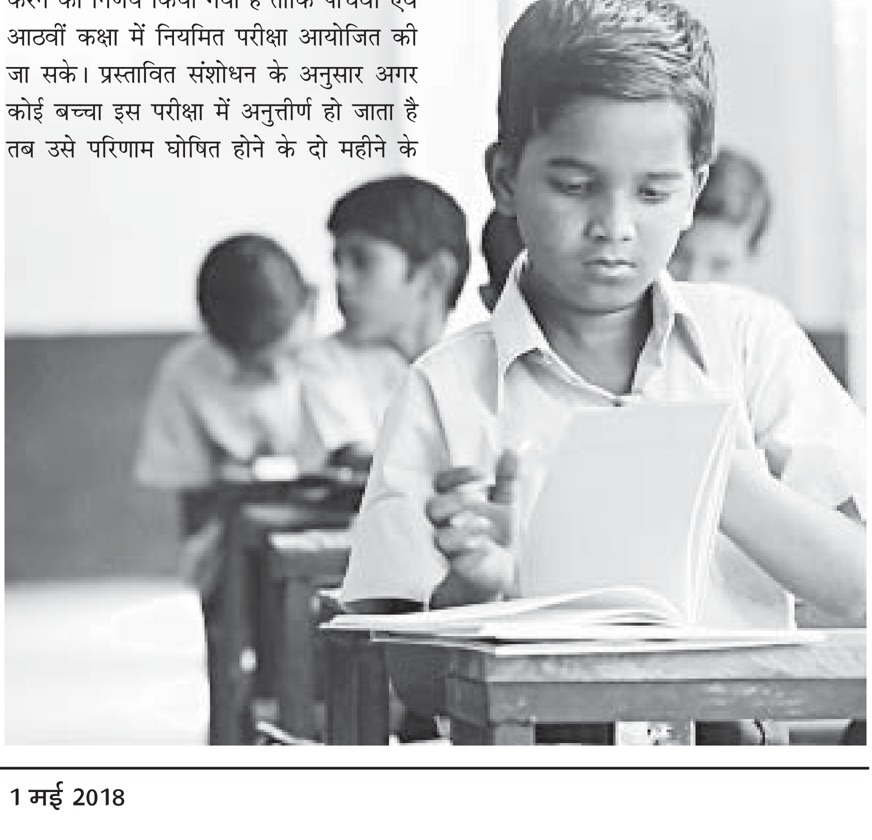

दिसंबर 2016 को विधि मंत्रालय ने भी मंजूरी दे दी। यहाँ कई ऐसे प्रश्न हैं जिसका उत्तर खोजना जरूरी है। पहला यह कि क्या 8वीं तक पास कर देने भर से बच्चों का शिक्षा का अधिकार संरक्षित रह सकता है? दूसरा, क्या शिक्षा के मायने हमारे लिए वैश्विक स्तर पर, प्राथमिक शिक्षा में अपने नामांकन स्तर को बढ़ाने मात्र तक सीमित हैं या फिर 'शिक्षा' का उद्देश्य इससे इतर कुछ और भी है। दरअसल शिक्षा, आखर ज्ञान, डिग्री पाना नहीं है, बल्कि सामाजिक प्रगति और सुधार की मूलभूत प्रक्रिया है। यह दो तरह से कार्य करती है, पहला मूल्यों की ओर बच्चों का मार्गदर्शन करके तथा दूसरा बच्चों के व्यक्तिगत रूप से बौद्धिक विकास में सहायता करके। स्पष्ट है कि अगर इस कसौटी पर प्राथमिक शिक्षा को आँका जाए तो परिणाम 'शून्यता' की ओर इशारे कर रहे हैं। 8वीं तक फेल न करने के पीछे स्पष्ट कारण थे, बच्चों के शिक्षा के अधिकार को संरक्षित करना, फेल होने के डर से उत्पन्न तनाव से मुक्ति दिलाना तथा इन सबसे ऊपर बच्चों के स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को नियंत्रित करना। परन्तु क्या इन प्राथमिकताओं से हम बच्चों का भविष्य संरक्षित कर पाने में सफल रहे? शायद नहीं, क्योंकि अगर ऐसा होता तो हरियाणा के 25,000 से अधिक अभिभावक 2015 में, 'राज्य शिक्षा विभाग' से अनुरोध नहीं करते कि उनके बच्चों की योग्यता का सही मूल्यांकन हो और अगर वे अयोग्य हैं तो उनको प्राथमिक कक्षाओं में पास नहीं किया जाए। हमें यह स्वीकारना होगा कि शिक्षा विभाग और सुब्रमण्यम समिति की ही नहीं अपितु अभिभावकों की चिंता का विषय बच्चों में शिक्षा का गिरता स्तर है। गैर सरकारी संगठन 'प्रथम' के एक देशव्यापी सर्वेक्षण में पाया गया था कि 50 प्रतिशत बच्चे ऐसे हैं, जो वैसे तो पाँचवी कक्षा तक पहुँच गए हैं, लेकिन वे दूसरी कक्षा की किताबों को पढ़ने में सक्षम नहीं हैं। रिपोर्ट से यह निष्कर्ष निकला कि ग्रामीण भारत के आधे बच्चे सामान्य स्तर से तीन कक्षा नीचे के स्तर पर हैं। इन परिणामों के कारणों पर अगर विचार किया जाए तो दो तथ्य उजागर होते हैं। पहला शिक्षा की गुणवत्ता में कमी तथा दूसरा बच्चों द्वारा फेल न होने के डर से मुक्ति के भाव के चलते शिक्षा के प्रति गंभीरता का अभाव। एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि शिक्षक भी इस बोध के चलते कि अंततोगत्वा बच्चों का दूसरी कक्षा के लिए पास होना तय है, वे भी अपने दायित्वों और कर्त्तव्यों की इतिश्री कर बैठे हैं।

हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि स्कूल छोड़ने का कारण पास या फेल होने से कहीं अधिक आर्थिक विवशताएँ एवं शिक्षा के प्रति झुकाव का अभाव है। अगर इन दोनों ही स्तरों पर कार्य किया जाए तो देश में प्राथमिक शिक्षा की तस्वीर बदल सकती है। क्या हम सभी यह स्वीकार नहीं करते कि जिस प्रकार के पाठ्यक्रम बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर पर रखे गए हैं वे न तो दिलचस्प हैं ना ही उपयोगी। ड्रॉपआउट के मुद्दे पर भी शिक्षाविद् चिंतित दिखाई देते हैं पर सच तो यह है जो बच्चे कागजों में नामांकित हैं वे भी कक्षाओं से गायब रहते हैं और इसके पीछे कारण, उपयोगिता खोती शिक्षा है। भारत की स्कूली शिक्षा को किताबों के बोझ से मुक्त होने की जरूरत है। सबसे पहला और आवश्यक कदम 'ज्ञान' देने के लिए रटने की परम्परा का त्याग होना चाहिए।

शिक्षा देने के साधन इतने मनोरंजनात्मक होने चाहिए कि वह बच्चे के भीतर अधिक से अधिक जानने की जिज्ञासा उत्पन्न कर सके। इस संदर्भ में हम फिनलैंड का उदाहरण ले सकते हैं। जहाँ अंग्रेजी भाषा सिखाने के लिए, बच्चों को अंग्रेजी भाषा के गाने सिखाए जाते हैं। संगीत में रच बस कर बच्चे शब्दों के अर्थ, उच्चारण और उनका प्रयोग करना सीख जाते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा को पूरा करने के बाद वोकेशनल स्कूल का विकल्प होता है जहाँ वे सारे कोर्स होते हैं जो बच्चों को आत्मनिर्भर बनाते हैं। हेयर डिजाइनर, कैफेटेरिया सर्विसेज और मैसोन (राजमिस्त्री) जैसे विषयों में बच्चे दो साल का कोर्स करते हैं इन वैकल्पिक विषयों के प्रति झुकाव का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि, प्राथमिक शिक्षा के बाद 40 प्रतिशत लड़कियाँ और 58 प्रतिशत लड़के इन वोकेशनल स्कूल में दाखिला लेते हैं। शिक्षा के चाहे हम किसी भी पहलू की बात करें, उसका मुख्य उद्देश्य, आत्मविश्वास को जाग्रत करना है और जीविकोपार्जन के लिए सक्षम बनाना है, और इन दोनों ही दृष्टि में हमारी संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था, नाकाम रही है। डिजिटल इंडिया की ओर बढ़ता भारत अगर शिक्षा देने हेतु मनोरंजनात्मक वृत्तचित्रों का समावेश करेगा तो यकीनन बच्चे इसे तीव्रता से ग्रहण करेंगे। एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि आर्थिक विवशताओं के चलते छठवीं-सातवीं तक आते-आते बच्चे पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने के लिए स्कूल छोड़ देते हैं। क्या इन परिस्थितियों में यह बेहतर नहीं होगा कि व्यावसायिक या कौशल प्रशिक्षण को स्कूल पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए। ऐसे कार्यक्रम बच्चों को शिक्षित करने के साथ-साथ, उन्हें आर्थिक निर्भरता की ओर भी लेकर जाएँगे। हो सकता है कि इस संदर्भ में तर्क यह दिया जाए कि अल्पायु में बच्चों को किसी रोजगार विशेष की ओर प्रवृत्त करना गलत होगा। यह पक्ष पूर्णतया अतार्किक नहीं है परन्तु जब आर्थिक स्वावलंबन एवं जीविकोपार्जन का प्रश्न हो तो भारतीय प्ररिप्रेक्ष्य, विशेषकर ग्रामीण एवं निर्धन परिवारों के लिए किताबी शिक्षा दोयम हो जाती है। हर देश की अपनी प्राथमिकताएँ एवं आवश्यकताएँ होती हैं और उसी के अनुरूप वहाँ की शिक्षण व्यवस्था का ढाँचा होना चाहिए। वर्षों से चली आ रही शिक्षा-पद्धति की उपयोगिता के संबंध में चर्चा करने का अब समय आ गया है। ❑

(व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, पुष्कर)

Quality education needs quality teachers. In our education system on first hand we have high shortage of teachers and hence not meeting at all the Pupil Teacher Ratio (PTR) as envisaged by different commissions like Mudaliyar commission, Kothari commission and National Policies on Education (1968 and 1986). The distribution is skewed one. On the other hand even in available teachers we rarely see quality teachers. Most of the teachers are without teaching attitude and aptitude. So the fate of school education can be visualized easily.

Perception about Education in Emerging Indian Society

❑ **Prof. Prakash Chandra Agarwal**

Educational scenario of any country is considered to be the measure of its progress and development. Education is progressive and so is true for the society. In emerging Indian society, literacy is taken panacea of all evils. Language literacy, numeral literacy or numeracy, scientific literacy, computer literacy, digital literacy etc. are expanding horizons of literacy.

We wish an inclusive growth leading to growth of an inclusive emerging society. Education ForAll (EFA) or sab padhen, sab badhen; padhe chalo, badhe chalo, are popular slogans for mass awareness to get rid of illiteracy and backwardness. Various schemes were launched by Governments like District Primary Education Programme (DPEP), Sarva Shiksha Abhiyan (SSA), Rashtriya Madhyamic Shiksha Abhiyan (RMSA), Rashtriya Avishkar Abhiyan (RAA), Rashtriya Uchhatar Shiksha Abhiyan (RUSA) to make education accessible and in reach of all the sects of society including habitants of remote areas, tribal areas, downtrodden groups, deprived and disadvantaged groups and differently-abled persons or divyangs. Now all existing schemes related to school education have been brought under one umbrella named as Integrated Scheme for School Education or Samagra Shiksha Abhiyan with a pious objective of providing education to one and all in the society. It is realized that though different schemes were for different stages of school education, however there was sometimes an overlapping in budget provisions and most of the times same Key Resource Persons or Master Trainers were empowered and prepared to cater and further advance the training and capacity building of teachers to bring the expected changes in actual field or classrooms. The quality cadre of Key Resource Persons could not be created to the expected level and a lack of seriousness in trainings and thereafter in implementation in field was realized all the time.

The main focus of our country has been consistently on access, enrolment, retention and achievement and even on quality. A significant improvement is observed in access and enrolment, less in retention, lesser in

achievement and the least in quality. So in New Policy on Education it is expected that taking care on the aspects of access and enrolment would be continued, larger attention would be paid on retention of enrolled children to meet the challenges of drop-outs and stagnation. Out of school (OoS) children would be enrolled and be motivated not to leave schools in between. The largest focus is assumed to be on quality dimension of school education and teacher education which would result in higher achievement and better learning outcomes.

Quality education needs quality teachers. In our education system on first hand we have high shortage of teachers and hence not meeting at all the Pupil Teacher Ratio (PTR) as envisaged by different commissions like Mudaliyar commission, Kothari commission and National Policies on Education (1968 and 1986). The distribution is skewed one. On the other hand even in available teachers we rarely see quality teachers. Most of the teachers are without teaching attitude and aptitude. So the fate of school education can be visualized easily. To check it, teacher education should be overhauled and revamped to a very high extent. A lot many Teacher Education Institutions (TEIs) have been emerged recently to address the growing demand of teaching professionals; however quality has been lowered in the same proportion. The regulatory body, NCTE, though is striving hard to maintain quality, yet outcomes are discouraging.

In coming months it is expected that a policy would be suggested to meet this challenge and as a result production of quality teachers fluent in content, expert in pedagogy and well to do with technology would be ensured. Teacher education and school education are related with each other explicitly as well as implicitly. Teachers with sound technology integrated pedagogical knowledge would be able to create conducive environment for quality of education so as quality citizens would be produced with ethics and values imbibed in their personality.

Vocational education and science education would further help us in nourishing and nurturing our precious youth human resource. We can write growth story of India by salvaging the Indian demographic dividend. Formation of Sharada Prasad Committee in 2016 by the Indian government is a milestone in improvement of 'Skill India'. The two goals in Skill India are, first to meet employers' needs of skill and, second to prepare workers (young and old) for decent livelihood. The focus is on youth and vocational education/training (VET) is not for just underprivileged communities; it is not a stopgap arrangement for those who cannot make it through formal education. Actually it is for all youths. Having a separate stream for vocational education (in secondary education), creation of vocational schools and vocational mobility, and having Central University to award degrees and diplomas are strong demands of the hour.

India can surely become the world's skill capital but not with she is doing right now. The reforms suggested by Sharada Prasad committee can be a good starting point for we cannot let another generation lose in dreams.

There are multiple components needed for science to drive policy. For every component, the critical aspect is engagement. If scientists want anything to happen, they should engage young bright scholars. We cannot just state the problem, and say the government should do this or that.

India's science academies need to ramp up, like the world's best academies, in giving feedback to the government. We need to reach out to our municipal, state or central representatives to tell them what is happening, so they can be our agents in using science to solve our problems, While Indian science academies have brought out some documents over the years, these have been generic. We don't have deep-dive documents on energy, health, nutrition, education and so on, which do more than state the generic problem.

A proper linkage between school education and higher education would harness the potential of youths to greater extent in development of society and nation. Firstly school education should be given a louder thought to improve it even for better higher education scenario as this is feeder channel to higher education. RUSA can prove to be a real game changer for higher education in the country. It has not only re-prioritized the country's needs, from funding just a few premier institutions to reaching out to institutions on the bottom of the pyramid, but has also changed the way regulators need to function. However its litmus test will be in how impartially the scheme is administered by the MHRD and the degree to which the State governments allow the State Higher Education Councils to function.

The much awaited New Education Policy after more than decades of earlier policy of 1986 would definitely consider all the issues raised and would also be implemented effectively to see its positive and progressive results. ❑

(Professor of Physics & Principal,
Regional Institute of Education,
Bhubaneswar, Odisha)

Today in Bharat, we have just two categories of citizens. The first who loves and lives for Bharat, and the second who doesn't give any importance to Bharat. This is not a simple binary, it a complex and complicated binary with many kinds of implications. There was a time in Bharat that in the defence services they used to assign sensitive assignments to Swayam Sevaks. This has only one reason, that the Swayam Sevaks shall lay down their lives for Nation voluntarily. Here the question is of trusting a citizen in Nationalism.

Thinking for New Education Policy

❑ Dr. TS Girishkumar

Education ought always to be looked at as the most sensitive phenomenon in any kind of statecraft. This is most sensitive just for one single reason, that it is this education system that shapes the future society, and social engineering is carried out mostly through education. This, at once becomes the designing of society, and through designing of society, it becomes designing of Nation, and as Shri Aurobindo would say, Nation Soul. In short, education must be for making the Nation in all practical thoughts.

Why Nation is important?

Today in Bharat, we have just two categories of citizens. The first who loves and lives for Bharat, and the second who doesn't give any importance to Bharat. This is not a simple binary, it a complex and complicated binary with many kinds of implications. There was a time in Bharat that in the defence services they used to assign sensitive assignments to Swayam Sevaks. This has only one reason, that the Swayam Sevaks shall lay down their lives for Nation voluntarily. Here the question is of trusting a citizen in Nationalism.

Education planning in Bharat

Since the Nation's independence in 1947, the then government carried outmany programmes to address the problems of illiteracy in both rural as well as urban societies.The stress was on a strong central government control over education throughout the Nation, with a uniform education system. The Union government established the University Education Commission (1948–1949), the Secondary Education Commission (1952–1953) and the Kothari Commission (1964–66) to develop proposals to modernise education system. The Resolution on Scientific Policy was adopted by the government. The then government thought for the development of high-quality scientific education institutions such as the IITs. In 1961, the central government formed the NCERT as an autonomous organisation that would advise both the Union and state governments on formulating and implementing education policies. An Education Commission was set up further and its report on education was sought for, which was promptly submitted.

Based on the report and recommendations of the Education Commission (1964–1966), the government announced the first National Policy on Education in 1968, which called for a "radical restructuring" and equalise educational opportunities in order to achieve national integration and greater cultural and economic development. The policy called for fulfilling compulsory education for all children up to the age of 14, as stipulated in the Constitution, and the better training and qualification of teachers. The policy called for focus on learning of regional languages, outlining a three-language formula to be implemented in secondary education. The formula was in this manner: English as a compulsory language, vernacular and Hindi.The decision to adopt Hindi as the national language was made an instrument by some corners in politics and controversies were created.Some started arguing in favour of Sanskrit, and the government started promoting Sanskrit language also. The NPE of 1968 called for education spending to increase to six percent of the national income. As of 2013, the NPE 1968 has moved location on the national website.

A new programme got into action in January, 1985, to develop another education policy. In May 1986, that new education policy came into existence with a different perspective of "special emphasis on the removal of disparities and to equalise educational opportunity," especially for Indian women, the SC and ST communities. To achieve such a social integration, the policy called for expanding scholarships, adult education, recruiting more teachers from the SCs, incentives for poor families to send their children to school regularly, development of new institutions and providing housing and services. The NPE called for a "child-centred approach" in primary education and launched "Operation Blackboard" to improve primary schools nationwide. The policy expanded the Open University system with the Indira Gandhi National Open University, which had been created in 1985. The policy also called for the creation of the "rural university" model, based on the philosophy of Mahatma Gandhi, to promote economic and social development at the grassroots level in rural Bharat.

The 1986 National Policy on Education was modified in 1992 by the next government. In 2005, the next government adopted a new policy based on the "Common Minimum Programme" of the UPA government. Programme of Action (PoA), 1992 under the National Policy on Education (NPE), 1986 envisaged conduct of a common entrance examination on all India basis for admission to professional and technical programmes in the country. For admission to Engineering and Architecture/Planning programmes, Government of India vide Resolution dated 18 October 2001 has laid down a Three – Exam Scheme (JEE and AIEEE at the National Level and the State Level Engineering Entrance Examinations (SLEEE) for State Level Institutions – with an option to join AIEEE). This takes care of varying admission standards in these programmes and helps in maintenance of professional standards. This also solves problems of overlaps and reduces physical, mental and financial burden on students and their parents due to multiplicity of entrance examinations.

Ground reality

We know that we have excellent thinkers and planners in Bharat, and it is natural for them to give very deft and complete reports on anything asked for. With all these, still, we don't see results of such plans among us, in our societies. There could be two reasons to this, The first (and most importantly) the people in rule are neither honest nor sincere towards the future of Bharat, Bharatiya society and Bharatiya Swabhimana. The second difficulty arises from the people who are physically involved in planning, who are not seriously Nation loving. What else? When the ruling authority is not very honest, when the leaders are self-seeking, the subordinates also shall become self-seeking: honest people shall not venture to involve in things. As a result, policies existed in paper, but hardly anyone was benefited and the importance of Bharat was undermined among international community.

New Education Policy

The new education policy should contain Bharat in all its meanings. Only a strong and honest government can put an end to officers who are self-seeking and even corrupt, such people will be afraid and stay within their limits if and only if honest leaders function through strong decisions, giving rise to very strong government as well as very strong Nation. New education policy should be completely based on Bharatiya Sanskriti and the Vedopanishadic knowledge tradition, and we should look at the world only from Bharatiya perspective. Our society must be made rooted in Bharatiya Sanskriti, and once the roots are formidable, our citizens can go anywhere, and involve in knowledge creation for anyone, ever remaining integrated. Integrated existence of citizens of Bharat is taught to us from the Vedopanishadic epistemology of co-existence through Integral Yoga of Maharishi Aurobindo to Integral Humanism of Pundit Deen Dayal Upadhyaya. It is about time, to put all these things into the curricula towards making India Bharat. ❑

(Professor of Philosophy, The Maharaja Sayajirao University of Baroda)

Understanding Value based Education

Value based education is the medium. In contemporary India, there is need of knowing the real essence of values as many people are much trapped under corruption. Unforeseen consumerism after globalization has increased everyday demands of people and many people fail to restrict their greed and demands. This greed and a sense of competition adds to vices like corruption and people without values fail to restrict their mind and soul and finally entail to corruptions one after another. So value based education is the cry of the day and the education needs to be imparted from the very early age of the human life.

❑ **Prof. Lipi Ghosh**

Education is an interactive gospel. As we understand education is the master key for human development because education transforms character. Education is not just for students in the traditional parameters of class lectures. To Swami Vivekananda 'education permeates not only the walls of hall of learning but it inculcates new teaching and its manifestation in every walk of life' . No doubt education gives us knowledge of the world around us and changes it into something better. It develops in us a perspective of looking at life.

Value- education is a process of teaching and learning about the ideals that a society deems important. Value-based Education is an approach to teaching that works with values. It creates a strong learning environment that enhances academic attainment and develops students' social and relationship skills that last throughout their lives.

Why values are important? Our values form our thoughts, words and actions. Our values are important because they help us to grow and develop. Any decision we take is a reflection of our values and beliefs. Dalai Lama wrote – 'Open your arms to Change but do not let go of your values.' When our actions and words are aligned with our values, life is generally good and we feel content, confident and satisfied. But when our behaviors don't match-up with our values, we soon begin to sense an uneasiness that begins to swell and grow inside of us.

If we read the writings of our predecessor great personalities, we can identify the following values. These values are the most important for a human being to live by and the ones

which one person wants to carry forward to the future generations. Alex Blackwell has written extensively on the features of Value based education and the following characteristics are partially based on his writings.

1. **Appreciation.** Taking a brief moment to say, "dhonyobad" fills the soul of you and the person in front of you with more appreciation too.
2. **Belief in Others.** It can be attitude or resolution of a person which can lift someone up when they are down. It is said belief is contagious – the more you believe in others; the more you will continue to believe in yourself.
3. **Caring**. Caring for others allows you to extend a helping hand and to pass along some unexpected grace. When someone takes the time to reveal that he cares; he exhibits the fact there are still plenty of good people left in this world.
4. **Commitment.** Commitment shows faithfulness and it can show courageousness and tenacity as well. A commitment is a promise made and ultimate achievement to reach a goal
5. **Compassion.** No doubt we have different ethnicity, religions and political points-of-view, but at the end of the day, we still need to take care of one another. A person without compassion cannot be a human being
6. **Cooperation.** It is the work and task done together in a team spirit.
7. **Courtesy.** It is showing of politeness in one's attitude and behaviour towards

   A courtesy is a polite remark or respectful act. Complain about a bad meal, and you might get kicked out. But the common courtesy is usually an apology from the manager and, if you're lucky, a free dinner.
8. **Dedication.** No matter how the circumstances may change, unless you are in a physically or emotionally abusive situation, stay in the process and never give up.
9. **Devotion.** Love, loyalty, or enthusiasm for a person or activity. Things can get unstable at times, but staying devoted to a cause or to a person through the uncertain times is quite important
10. **Effort.** No matter the outcome, there is always value in the effort when the effort is authentic and well-intended.
11. **Forgiveness.** It is the intentional and voluntary process by which a victim undergoes a change in feelings and attitude regarding an offence, lets go of negative emotions such as vengefulness, with an increased ability to wish the offender well.
12. **Friendship.** Friends support us and they provide an unfiltered view of our actions when asked. Friends sustain us through difficult periods and join us for the events we celebrate.
13. **Gratitude.** It is the quality of being thankful; readiness to show appreciation for and to return kindness.
14. **Honesty.** Honesty refers to a facet of moral character and connotes positive and virtuous attributes such as integrity, truthfulness, straightforwardness, including straightforwardness of conduct.
15. **Hope.** Hope is the fuel that keeps us moving forward when we are the most tired.
16. **Integrity.** What defines our character and our integrity is not measured by what happens to us; but rather by how we react and respond to what happens to us.
17. **Love.** The presence of love in our life, the love we have for our families, our friends, our faith and for ourselves, is the single most important source of light and energy we can tap into when we have the need to be filled-up; or when we see the need to fill someone else up with grace, hope and our love.
18. **Optimism.** Take what you have been given and make the best of it.
19. **Patience.** It is the capacity to accept or tolerate delay, problems, or suffering without becoming annoyed or anxious. It helps for better decision making
20. **Respect.** It means a feeling of deep admiration for someone or something elicited by their abilities, qualities, or

achievements.

21. **Sacrifice.** It means to give up (something valued) for the sake of other considerations.
22. **Tolerance.** It is the ability or willingness to tolerate the existence of opinions or behaviour that one dislikes or disagrees with... It shows respects, patience and courtesy – all important values in their own right too.
23. **Vision.** Vision is created by our dreams, alike, Vision provides the avenue to take our lives to wherever we want them to go. Our vision reminds us that we are always capable of learning and growing into who we want to be.

How to implement these values in life ?

Value based education is the medium. In contemporary India, there is need of knowing the real essence of values as many people are much trapped under corruption. Unforeseen consumerism after globalization has increased everyday demands of people and many people fail to restrict their greed and demands. This greed and a sense of competition adds to vices like corruption and people without values fail to restrict their mind and soul and finally entail to corruptions one after another. So value based education is the cry of the day and the education needs to be imparted from the very early age of the human life.

Values-based education is an approach to teaching that works with values. Value education, both formal and informal, can help students to develop their own personal moral codes and have a concern for others. They can learn how to reflect on their experiences in life and know how to distinguish between right and wrong.

Methodologies and techniques to implement value based education:

We need to introduce Life Skills in class teachings We should have a set of lesson plans for teachers of the subject and introduce the concept of Value Based Integrated Learning (VBIL) wherein all lessons are linked to some values.

The school should take into cognizance and utilize all types of social and educational influences affecting the development of values in pupils for value education purpose. The methods and strategies of value education are many and varied the selection of, which depends much upon the values chosen, sources of development of these values and many other limiting factors. The entire school curriculum functions as an important source of value education. There should be no way in which children can avoid catching values. Value education in schools, therefore, is effected through direct, indirect, incidental methods. Values get transmitted via both the implicit or hidden and planned curriculum. The following methods and techniques may be suggested for implementation.

1. Classroom learning activities/ methods/ approach These strategies should be used with any of the following sources of value education (a) Biographies (b) Stories (c) Extracts form essays, articles, classics and newspapers (d) Parables, proverbs, quotations and poems (e) value/moral dilemmas (f) classroom incidents/ anecdotes/ conflicts.

2. Practical activity method The essence of practical approach is that it provides the learners with suitable opportunities to practice and live their lives according to the principles and values they have perceived and understood. A sound program of value education may include a combination of a few or all activities mentioned below- (a) School campus/classroom maintenance activities (b) Social forestry/community development activities (c) Work experience relating social activities (d) Organizing campaigns on community sanitation, literacy, environmental awareness, AIDS prevention awareness (e) Yoga, meditation and prayer sessions (f) eradication of social evils campaign activities (gender inequality, dowry, alcoholism…) (g) co-curricular/self government activities.

Finally for a successful implementation, the parents are also to be involved in the curriculum. There should be Teacher- parent interaction to teach how the parents should also begin the values at home and maintain it at home. It is an emerging issue and we may hope that by next two generations, it will reach a height of success.❑

(Professor, Deptt. of South & South East Asian Studies, University of Calcutta)

वस्तुत: भारतीय शिक्षा-व्यवस्था ने प्रत्यके विद्यार्थी के आत्मबोध (Self-actualizations), राष्ट्रबोध (Awareness of our Bharat Khande Dweep) और विश्वबोध (Cosmic vision) को हजारों वर्षों तक जाग्रत, उद्दीप्त और उन्नत रखा है। जब तक यह शिक्षा-व्यवस्था मजबूत रही हम स्वतंत्र भी रहे और समुन्नत भी और जब यह शिक्षा-व्यवस्था अपने आंतरिक ठहराव के कारण जड़ीभूत हो गई हम बाहर के आक्रमणों के आगे एक के बाद एक लगातार पराजित होते गए। आज हमें पुन: जाग्रत होकर, हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था को वर्तमान युग के संदर्भों में पुर्नपरिभाषित करके इसे पुनर्स्थापित करनी चाहिए।

भारतीय शिक्षा की पुनर्स्थापना

❑ **डॉ. राघव प्रकाश**

भारत विश्व का प्राचीनतम और समृद्धतम बौद्धिक देश है। विश्व का सबसे पुराना साहित्य जो पहले श्रुत रहा और फिर लिखित रूप में आया वह ऋग्वेद है जो विषय-वस्तु की व्यापकता, गहनता और संप्रेषणीयता की दृष्टि से अद्भुत है और प्रमाणित है। ऋग्वेद काव्यात्मक है जो चिंतन, संवेदना और भाषा की सर्जनात्मकता का प्राचीनतम उत्कृष्ट प्रतिमान है और उसके बाद अन्य तीन वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, स्मृतियों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, व्याकरण, साहित्य, धर्म-दर्शन विभिन्न विद्याओं और कलाओं की सघन परंपरा का साहित्य उपलब्ध है जो अधिकतर विदेशी आक्रमणों से पूर्व तक अर्थात् 1000 ई. तक लिखा जा चुका है। यह सब लिखित साहित्य जो अधिकतर शोधपूर्ण है, अनुभवात्मक, चिंतनात्मक और मौलिक है, भारत में विद्यमान रही समृद्ध शिक्षा-व्यवस्था से ही संभव हुआ है। नालंदा और तक्षशिला जैसे बड़े आवासीय विश्वविद्यालय, जिनमें अन्य देशों के विद्यार्थी भी अध्ययन करते थे, एक सुदीर्घ, सुव्यवस्थित, सुप्रसिद्ध और उपयोगी शिक्षा-व्यवस्था के केंद्र रहे हैं। अलग-अलग ऋषियों के गुरुकुल, जिनमें सैकड़ों- हजारों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे, अपनी विचार-दृष्टि और शिक्षा-पद्धति के अलग-अलग संस्थान रहे हैं, भारद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, पाराशर, वात्स्यायन, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि आदि ऋषियों ने और उनकी वंश-परपंरा तथा विचार-परंपरा ने हजारों वर्षों तक चिंतनशील शिक्षा -व्यवस्था को जारी रखा है। भारतीय दर्शन, धर्म, साहित्य एवं जीवन-शैली में विविधता के बावजूद एक-दूसरे को सम्मान देना, पूर्व की स्थापनाओं को समीक्षात्मक दृष्टि से आगे बढ़ाना, एक खुली, अंत:क्रियात्मक, विश्लेषणात्मक शिक्षा-व्यवस्था का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

विश्वविद्यालय एवं गुरुकुल व्यवस्था की आवासीय पद्धति, गुरु और शिष्य एवं शिष्य और शिष्य के बीच की शिक्षण-पद्धति अंत:क्रियात्मक (Interactive), सहभागितापरक (Participatory), सहयोगात्मक (Co-operative), अनुभवात्मक (Experiencial), आत्म-संधानात्मक (Self-discovery oriented), सामूहिक कौशलपरक (Group Sikll oriented) और जीविकोपार्जन सक्षम (abling livelihood) रही है क्योंकि गुरुकुल पद्धति शिक्षा आवासीय रही है और ज्यादातर गुरुकुल ग्राम-नगर से दूर प्रकृति के खुले, चुनौतीपूर्ण परिवेश में रहे हैं इसलिए

ये विश्वबोध(cosmic vision), नवाचारशीलता (innovativeness), सर्जनात्मकता (Creativity) और शोधपरकता (research) की प्रयोगशालाएँ रहे हैं और इसीलिए नए और गहन ज्ञान के सृजन को केंद्र में रखते रहे हैं (focused)। पश्चिम में तक्षशिला से लेकर पूर्व में नालंदा तक, उत्तर में हिमालय की हिम-गुफाओं से लेकर तराई प्रदेश एवं फिर वाराणसी से मध्यप्रदेश तक शिक्षा के केंद्रों का प्रसार विचार की विविधता, गहनता और समादृतता को लिए हुए रहा है।

7वीं शताब्दी में सुदूर दक्षिण केरल में जन्मे आदिगुरु शंकराचार्य बद्रीनाथ, द्वारका, शृंगेरी, रामेश्वरम् आदि स्थानों पर अद्वैतवादी ज्ञानधारा की स्थापना करके चिंतन-धर्म-दर्शन-साहित्य-भाषा-व्याकरण की विश्वबोधात्मक परंपराओं को राष्ट्रीय स्वरूप देने का जो अद्भुत व्यापक प्रयास कर सके और जिस परंपरा का आजतक भी चलन है, यह भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की सार्वभौमिकता और व्यापक स्वीकार्यता को प्रमाणित करता है। क्योंकि यह शिक्षा-व्यवस्था अनेक दृष्टियों से प्रगतिशील रही है और उसके प्रभाव से भारतीय समाज विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठित भी रहा है। वस्तुतः भारतीय शिक्षा-व्यवस्था ने प्रत्यके विद्यार्थी के आत्मबोध (Self-actualizations), राष्ट्रबोध (Awareness of our Bharat Khande Dweep) और विश्वबोध (Cosmic vision) को हजारों वर्षों तक जाग्रत, उद्दीप्त और उन्नत रखा है। जब तक यह शिक्षा-व्यवस्था मजबूत रही हम स्वतंत्र भी रहे और समुन्नत भी और जब यह शिक्षा-व्यवस्था अपने आंतरिक ठहराव के कारण जड़ीभूत हो गई, हम बाहर के आक्रमणों के आगे एक के बाद एक लगातार पराजित होते गए। आज हमें पुनः जाग्रत होकर, हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था को वर्तमान युग के संदर्भों में पुनर्परिभाषित करके इसे पुनर्स्थापित करना चाहिए।

प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की बीज स्थापनाओं, विषय-वस्तु, प्रक्रिया एवं व्यवस्था को हमें समकालीन संदर्भों में प्रासंगिक बनाना ही चाहिए। हम जानते हैं कि शिक्षा-व्यवस्था ही समाज के पुनर्निर्माण की आधारभूत प्रक्रिया है और भारतीय समाज आज पुनर्निर्माण की गहरी अपेक्षा रखता है। इसलिए समाज में सकारात्मक बदलाव की दृष्टि से भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन करने की जरूरत है।

भारतीय शिक्षा संस्कारमूलक रही है, जो आज भी आवासीय व्यवस्था के द्वारा ही अधिक सहजता से संभव हो सकती है। इसलिए हमें प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा को यथासंभव अधिकाधिक आवासीय बनाने की आवश्यकता है। आवासीय शिक्षा-व्यवस्था आत्मसंधानात्मक (Self-discovery oriented), सहभागितापरक (Participatory), सहयोगात्मक (Co-operative), नवाचारयुक्त (innovative), सर्जनात्मक (creative) और शोधात्मक (research oriented) तथा प्रभावी (effective) हो सकने का व्यावहारिक मंच प्रदान कर सकती है। किंतु केवल आवासीय होने से भी सब-कुछ नहीं हो जाता, पश्चिमी देशों के तौर-तरीकों से बने हमारे विश्वविद्यालयों के बहुत-से छात्रावास कितने संस्कारहीन हैं, और अपराधों के आश्रय-स्थल भी बने हुए हैं, यह सब जानते हैं। किंतु यदि हम आवासीय व्यवस्था में प्रत्येक छात्र-छात्रा का आत्मबोध, आत्मछवि मजबूत करके उससे वैश्विक स्तर के सर्जनात्मक योगदान की अपेक्षा करें तो वह निश्चय ही आत्मसंधानात्मक दृष्टि अपनाकर विश्वस्तरीय शोधकर्मी और नवाचारी बन सकेगा, और तब प्रत्येक विद्यालय-महाविद्यालय-विश्वविद्यालय में सर्जनात्मकता का व्यापक विस्फोट होगा। हमारे संस्कारशील बच्चे सहभागिता की प्रक्रिया से एक-से-एक नवाचारों के पुरोधा बनते जाएँगे।

हमारे आवासीय शिक्षक इधर-उधर के सब धंधों को छोड़कर, सर्जनात्मकता के प्रेरक (inspire), सहायक (facilitator) और सहकर्मी (co-worker) बनेंगे। विशेष जीवन-दृष्टि और शिक्षा-दृष्टि के कारण हमारा आत्मबोध, राष्ट्रबोध और विश्वबोध मजबूत होगा। तब हम जीविकोपार्जन वाली शिक्षा को तो निर्मित कर ही लेंगे जो आज दुनिया के प्रत्येक युवा का सपना बना हुआ है, बल्कि उस शिक्षा को भी विकसित कर लेंगे जो उसे सृजन का आनंद देती है, जो उसे विश्व-प्रचेता होने का गौरव देती है, जो उसे विश्व के साथ एकाकार हो जाने पर आत्मानंद की अनुभूति देती है। हमें ऐसी शिक्षा-व्यवस्था को गढ़ने का अविलंब गंभीर, साहसिक, सुव्यवस्थित प्रयास शुरू कर देना चाहिए। सरकार कोई भी हो, राजनीतिक व्यवस्था कोई भी हो किंतु यदि हम भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को मजबूत बनाएँगे तो राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति सब-कुछ सुधरेगी, और हम विश्व को भी नई दृष्टि दे सकेंगे।

पहले भी भारत ने ऐसा किया है, हम आज के इस वैश्विक युग में इसे और अधिक प्रभावी ढँग से कर सकते हैं। हम सुविधाजनक स्थिति में हैं क्योंकि हम हमारी समृद्ध परपंरा को निश्चित ही पुनर्निमित कर सकते हैं। ❑

(निदेशक, परिष्कार कॉलेज ऑफ ग्लोबल एक्सीलेंस, जयपुर)

शिक्षा में सत्याग्रह

❑ नंदकिशोर आचार्य

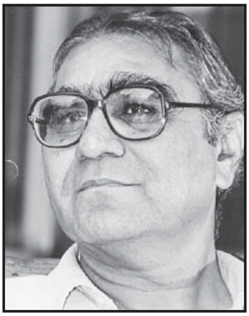

यह आश्चर्यजनक पर विड़म्बनापूर्ण है कि लगभग सभी शिक्षा-सम्मेलनों और संगोष्ठियों में बाजार, वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीतियों और उनके परिणामों की घोर आलोचना के बावजूद शिक्षाशास्त्रियों की तरफ से राज्य पर ऐसा कोई दबाव नहीं डाला जा रहा है कि वह अपनी नीतियों पर शिक्षा के संदर्भ में पुनर्विचार करे- बल्कि शिक्षाशास्त्रियों पर ही बाजार के संदर्भ में शिक्षा में ही बदलाव के लिए दबाव डाला और उसे मनवाया जाता रहा है। शिक्षा का प्रयोजन आत्मसृजन है। लेकिन जिस व्यवस्था में आत्मा का ही लोप हो रहा हो, उसके खिलाफ सत्याग्रह फिलहाल शिक्षा जगत ही नहीं बल्कि पूरे संस्कृति-जगत की पहली प्रासंगिकता है। उसके बिना स्वयं शिक्षा और संस्कृति की ही कोई प्रासंगिकता नहीं रह जायेगी।

शिक्षा का प्राथमिक उत्तरदायित्व किसके प्रति है? इस सवाल का लगभग सर्वसम्मत उत्तर होगा शिक्षार्थी के प्रति, लेकिन शिक्षार्थी के प्रति दायित्व का तात्पर्य क्या है? तात्पर्य है शिक्षार्थी में अंतर्निहित सम्भावनाओं के प्रस्फुटन और विकास का माध्यम होना। लेकिन जब हम कहते हैं कि शिक्षार्थी में अंतर्निहित सम्भावनाओं का विकास-तो इसका तात्पर्य क्या है? 'शेखर: एक जीवनी' से अज्ञेय के शब्द उधार लेकर कहें तो जो मैं हूँ, वह मैं हो सकूँ। यह हो सकना क्या है और इसके लिए क्या करणीय है?

यह सवाल किया जाना चाहिए कि यदि शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित सम्भावनाओं के मूर्त होने की प्रक्रिया है तो इसके लिए ऐसा कोई पाठ्यक्रम या पाठ्यचर्या कैसे बनायी जा सकती है जो सभी पर एक साथ लागू होती हो? क्या सभी एक जैसे हैं या होने चाहिए? इस एकरूपीकरण का समर्थन लोकतांत्रिक बोध वाला कोई व्यक्ति नहीं कर सकता- बल्कि ऐसा करना, यदि वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो, प्रकृति के नियम के भी विरुद्ध होगा। प्रकृति में कुछ भी ऐसा नहीं है जो एक जैसा हो। समान गुणधर्म यानी एक जाति की प्रत्येक इकाई का अपना अलग वैशिष्ट्य होता है। एक पेड़ की अनगिनत पत्तियों में से कोई भी पत्ती किसी दूसरी पत्ती से पूरी तरह कभी नहीं मिलती। ऐसा ही मनुष्यों के साथ भी है। कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य जैसा नहीं होता। रघुवीर सहाय के शब्दों में कहें तो प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय होता है और जब हम उसे एक सामान्य शिक्षा-प्रक्रिया से गुजार रहे होते हैं तो उससे उसके अद्वितीय होने का अर्थ उसका अन्य से अधिक अधिकारों या सुविधाओं का हकदार होना नहीं है। सामान्यत: हम अद्वितीयता या निरालेपन या वैशिष्ट्य को समानता का विरोधी मान लेते हैं। समानता समरूपता नहीं है बल्कि जहाँ प्रत्येक की अद्वितीयता सुरक्षित है। वहाँ समानता स्वयमेव सुरक्षित हो जाती है।

लेकिन हमारी सभी शिक्षा-नीतियाँ या कार्यक्रम कुछ इस तरह की व्यवस्था करते हैं कि समानता के नाम पर असमानता की आधार-भूमि अपने-आप ही तैयार हो जाती है- यद्यपि यह कहना मुश्किल है कि यह अपने-आप हो जाना अनजाने होना भी है। जब हम यह स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्ट अंतर्निहित सम्भावना होती है तो कोई भी समान पाठ्यक्रम कुछ व्यक्तियों के लिए अधिक अनुकूल होगा और उन लोगों के विकास में बाधा साबित होगा जिनकी सम्भावनाएँ उस पाठ्यक्रम के अनुकूल नहीं हों, स्पष्ट है कि वे लोग इस पाठ्यक्रम के हिसाब से सफल या प्रतिभाशाली नहीं साबित हो सकेंगे और पिछड़ जाएँगे। ऐसा होने में शिक्षा असमानता पैदा करने का एक और कारण बन जायेगी। दरअसल, इसका मूल कारण यह

है कि पाठ्यक्रम या शिक्षा कार्यक्रम का निर्धारण करते समय हमारा लक्ष्य 'शिक्षार्थी' नहीं होता। हम उस समय शिक्षा के सामाजिक दायित्व की बात अधिक करते हैं और समाज की अपनी कल्पना के अनुरूप शिक्षार्थी का विकास करना चाहते हैं। 'सामाजिक दायित्व' पद सुनने में बहुत आकर्षक और लगभग सर्वस्वीकृत लगता है– क्योंकि कौन होगा जो सामाजिक दायित्व को उपेक्षणीय कहने का साहस कर सकेगा? लेकिन, तब हमें इस पर विचार करना होगा कि सामाजिक दायित्व का तात्पर्य क्या है? वास्तव में, जब हम सामाजिक दायित्व की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य राज्य और नये संदर्भों में बाजार के प्रति दायित्व हो जाता है। दूसरे शब्दों में हम उस शिक्षा को प्रासंगिक–बल्कि सार्थक मानते हैं जो किसी व्यक्ति को बाजार और वर्तमान परिस्थिति में उसके एजेंट राज्य के अनुकूल बना सकती हो। सामाजिकता बाजार की राजनीति का पर्याय बन जाती है। यह कहा जा सकता है कि बाजार का प्रभुत्व आज की वास्तविकता है और कोई शिक्षा वास्तविकता से मुँह मोड़कर प्रासंगिक और सार्थक नहीं बनी रह सकती। यह शिक्षा का दायित्व क्यों नहीं है कि वह शिक्षार्थी को हकीकत से रूबरू होना सिखाए?

लेकिन तब हमें रूबरू होने के तात्पर्य पर विचार करना होगा। क्या रूबरू होने का मतलब घुटने टेक देना या अपने वैशिष्ट्य यानी पहचान को, अपने आत्मसम्मान को नष्ट कर देना है? क्या रूबरू होने का वास्तविक तात्पर्य अपने अस्तित्व, अपनी स्वतंत्रता, अपनी अद्वितीयता का समर्पण है? जब हम किसी व्यक्ति की अंतर्निहित सम्भावनाओं को उसे बाजार के अनुकूल बनाने की प्रक्रिया में नष्ट कर रहे हैं तो क्या उसे वास्तविक अर्थों में शिक्षा कहा जा सकता है? शायद ही कोई वास्तविक शिक्षा शास्त्री बाजार के अनुकूल की गई इस प्रक्रिया को शिक्षा कहने वालों की सूची में अपना नाम दर्ज करवाना चाहेगा। लेकिन दूसरी ओर, यदि शिक्षा का नियमन और संचालन राज्य के नियंत्रण में रहेगा तो इस प्रक्रिया से बचाव तब तक सम्भव नहीं दीखता जब तक राज्य अपने को बाजार का एजेंट बनाने से इंकार न कर दे। ऐसा होना, कम से कम अभी तो, सम्भव नहीं दीखता।

दूसरा रास्ता शिक्षा को राज्य के नियंत्रण से मुक्त करना हो सकता है। लेकिन तब उसके वित्तीय संसाधनों की उपलब्धि कैसे हो? कहा जा सकता है कि उसके नियमन और वित्तीय प्रबंधन की जिम्मेदारी राज्य के बजाय समाज के हाथों में हो। लेकिन समाज एक अमूर्त अवधारणा हो गयी है। और खासतौर पर वित्तीय संसाधन जुटाने के मामले में तो उन सम्पन्न व्यावसायिक घरानों पर ही निर्भर होना पड़ेगा जो स्वयं बाजार का नेतृत्व कर रहे हैं और राज्य पर शिक्षा को बाजार के अनुकूल बनाने का दबाव डालते रहे हैं, ऐसा होने की स्थिति में तो वह शर्म भी नहीं बनी रहेगी जो कभी–कभी राज्य की आँखों में झलक जाती है – चाहे उसका प्रयोजन मतदाता को भुलावे में डालना ही क्यों न हो।

यह आश्चर्यजनक पर विड़म्बनापूर्ण है कि लगभग सभी शिक्षा–सम्मेलनों और संगोष्ठियों में बाजार, वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीतियों और उनके परिणामों की घोर आलोचना के बावजूद शिक्षाशास्त्रियों की तरफ से राज्य पर ऐसा कोई दबाव नहीं डाला जा रहा है कि वह अपनी नीतियों पर शिक्षा के संदर्भ में पुनर्विचार करे– बल्कि शिक्षाशास्त्रियों पर ही बाजार के संदर्भ में शिक्षा में ही बदलाव के लिए दबाव डाला और उसे मनवाया जाता रहा है। क्या ऐसा सम्भव नहीं है कि यदि राज्य शिक्षा शास्त्रियों के मंतव्य पर विचार नहीं करता है तो उन्हें स्वयं को राज्य से अलग करते हुए ऐसे स्वायत्त संस्थानों के विकास में और मदद करनी चाहिए जो इस जाल से निकलने के लिए वैकल्पिक प्रयत्न कर रहे हैं।

देश में, छोटे सही, ऐसे कई स्वायत्त संस्थान हैं जो इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, ऐसे सभी संस्थानों के लिए एक विनम्र सुझाव है। शिक्षा में, सामान्यत: अनुशासन का बहुत महत्त्व माना जाता है। लेकिन मुझे लगता है कि आज के संदर्भ में शिक्षा का प्रमुख कर्तव्य विद्रोही बनाना है। प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि वह अपनी अद्वितीयता की अभिव्यक्ति कर सके, उसे सिद्ध कर सके। लेकिन यदि कोई व्यवस्था, बाजार या किसी राजनीति की आवश्यकता के कारण, उसे वह होने से रोकती है तो उसके अंदर ऐसी व्यवस्था के प्रतिरोध का सामर्थ्य विकसित करना शिक्षा का ही दायित्व है। बहुत से शिक्षा संस्थान अलग तरह की शिक्षा की बात तो करते हैं, लेकिन अपने शिक्षार्थी को प्रतिरोध के लिए प्रेरित और उसके लिए सामर्थ्य जुटाने के लिए शिक्षित नहीं करते। कहा जा सकता है कि यह तो राजनीतिक संगठनों का काम है लेकिन जब राजनीतिक संगठन स्वयं बाजार के एजेंट बन गये हों तो यह दायित्व सीधे शिक्षा पर आ जाता है। शिक्षा की सार्थकता विद्रोही पैदा करने में भी हो सकती है – अहिंसक विद्रोही बनाने यानी शिक्षार्थी को प्रतिरोध के अहिंसक तरीकों में प्रशिक्षित करने में। महात्मा गाँधी की नयी तालीम, दरअसल इसी दिशा में एक प्रयास था। उसका प्रयोजन केवल कुछ दस्तकारों आदि को प्रशिक्षण देना या किसी व्यवसाय के योग्य बनाना मात्र नहीं था। यदि नयी तालीम सत्य की शिक्षा है तो असत्य के खिलाफ सत्याग्रह भी उसका एक अनिवार्य दायित्व है। नयी तालीम की योजना को ठुकरा दिये जाने का असल कारण भी शायद यही था कि लम्बे समय तक चलने पर एक ऐसा समाज तैयार कर सकती थी जो राज्य और बाजार का मुखापेक्षी नहीं होता और इसलिए जरूरत पड़ने पर अपने प्रति अहिंसक बाजार और राज्य का अहिंसक प्रतिरोध कर सकता। क्या अपने को राज्य से स्वतंत्र मानने वाले शिक्षा संस्थान शिक्षार्थी में अपनी स्वतंत्रता को बचाने और अपने पर हो रहे अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की प्रेरणा बन सकेंगे? यह नहीं भूलना चाहिए कि दुनिया में बहुत–सी क्रांतियों के बीज शिक्षा संस्थानों में ही बोये गये हैं। शिक्षा का प्रयोजन आत्मसृजन है। लेकिन जिस व्यवस्था में आत्मा का ही लोप हो रहा हो, उसके खिलाफ सत्याग्रह फिलहाल शिक्षा जगत ही नहीं बल्कि पूरे संस्कृति–जगत की पहली प्रासंगिकता है। उसके बिना स्वयं शिक्षा और संस्कृति की ही कोई प्रासंगिकता नहीं रह जायेगी। ❑

(साभार – भवन्स नवनीत)

साख के संकट से जूझती शिक्षा

❑ जगमोहन सिंह राजपूत

शिक्षा संस्थाओं को ऐसा नेतृत्व चाहिए जिसमें शिक्षा के प्रति पूर्ण समर्पण और प्रतिबद्धता का भाव हो जो यह मानता हो कि वह भारत के भविष्य निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। ऐसे व्यक्ति को संस्था में दृष्टिकोण परिवर्तन और कार्यसंस्कृति परिवर्तन के लिए स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करना होता है। जो लोग उसे संस्था में मिले हों, उन पर विश्वास करना होगा और अपने पर यह विश्वास रखना होगा कि वह इन्हें संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूर्णरूपेण समर्पित बना सकता है! इन संस्थाओं को ऐसे व्यक्ति चाहिए जो सामूहिकता में विश्वास रखते हों, मिलकर 'परिवर्तन' का अवलोकन करें, विश्लेषण करें, जो उपयोगी हो या आगे हो सकता हो, उस पर केंद्रित करें।

इस वर्ष 28 मार्च को केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड यानी सीबीएसई परीक्षा देकर बाहर निकले कक्षा दस के बच्चों के चेहरे प्रसन्नता और तनाव मुक्ति से खिले दिखाई दे रहे थे, लेकिन कुछ ही घंटों के भीतर देश भर में कोहराम मच गया। परीक्षा का प्रश्न पत्र 'लीक' हो गया था। कुल मिलाकर 28 लाख बच्चों को पुनः परीक्षा देने की घोषणा के बाद हताशा, आक्रोश तथा व्यवस्था द्वारा अपनी अकर्मण्यता से ठगे जाने का भाव परिवारों, पालकों तथा बच्चों के चेहरों पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था। इसके लगभग दो महीने पहले से भर्ती परीक्षाओं में धांधली को लेकर बड़ा आंदोलन हुआ। कुल मिलाकर परीक्षा लेने वाली संस्थाओं में सब कुछ सही, व्यवस्थित तथा अपेक्षित ढँग से नहीं चल रहा है और उनकी साख कम होती जा रही है। इसका खामियाजा देश की भावी पीढ़ी को भुगतना पड़ रहा है। स्वार्थी तत्त्वों मसलन राजनेता, व्यापारी तथा माफिया–के लिए शिक्षा मुनाफा कमाने का सबसे माकूल जरिया बन गई है। जब चारों ओर प्रभावशाली लोग व्यवस्था में छेद करने में पूरे मनोयोग से लगे हुए हों, तब संस्थागत कर्मचारियों से ही हर प्रकार की ईमानदारी की अपेक्षा करना कितना तर्कसंगत होगा? राजनीति किस कदर शिक्षा व्यवस्था को चौपट करती है इसका ताजा उदाहारण कर्नाटक की हालिया राजनीति में दिखता है। वहाँ लिंगायत समाज को अलग धर्म यानी अल्पसंख्यक समुदाय का दर्जा मिलने पर उनके द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं पर 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009' के प्रावधान लागू नहीं होंगे। यही नहीं संविधान के अनुच्छेद 30 के प्रावधानों के अंतर्गत उन्हें अपने शिक्षा संस्थान स्थापित करने तथा प्रबंधन के निर्बाध अधिकार भी प्राप्त हो जाएंगे! यह अलग तथ्य है कि इन प्रावधानों का अल्पसंख्यक समुदाय के हित में उपयोग उतना नहीं हुआ है जितना नियमों से बचने के लिए दुरुपयोग हुआ है। इसमें अहित तो बच्चों, यानी भारत के भावी कर्णधारों का ही होगा।

कोई भी राष्ट्र अपने बच्चों की देखभाल कैसे करता है, यह विकास और प्रगति के प्रति उसकी प्रतिबद्धता का मापदंड बनता है। सीबीएसई प्रकरण के विश्लेषण की महती आवश्यकता सभी स्वीकार करते हैं, मगर साथ ही साथ यह जानना भी जरूरी है कि इसको मात्र एक दुर्घटना मानकर समाधान नहीं निकाला जा सकता है। शिक्षा व्यवस्था में आपराधिक तत्त्वों तथा माफिया का सेंध लगाना पहली बार नहीं हो रहा है। प्रश्न पत्र चाहे स्कूलों, विश्वविद्यालयों के हों या नौकरी की

भर्ती परीक्षाओं के, पिछले दस-पंद्रह वर्षों से लगातार 'लीक' होते रहे हैं। संस्थाएँ इनसे सबक क्यों नहीं लेती हैं? क्या व्यापमं या बिहार बोर्ड के वैशाली के दृश्यों के बाद सीबीएसई को सतर्क नहीं हो जाना चाहिए था? इस वर्ष ही सीबीएसई आगे के पर्चे सीधे परीक्षा केंद्र पर भेजेगी, वहीं वे प्रिंट होंगे और उनके समय से पहले 'पैकेट' खोल लिए जाने की कोई आशंका बचेगी ही नही। यह सही कदम है, मगर इससे यह प्रश्न भी निकलता है कि इतनी प्रतिष्ठित संस्था आधुनिक संचार तकनीकी का उपयोग करने में इतनी शिथिल क्यों रही? जो देश की भावी पीढ़ी को तैयार करते हैं, उन्हें भविष्य-दृष्टि का धनी तो होना ही होगा। जो वर्तमान की व्याख्या कर भविष्य में झाँक सके वही शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं को नेतृत्व दे सकते हैं।

सरकारों को अपनी यह समझ बढ़ानी पड़ेगी कि नौकरशाही नेतृत्व अकादमिक नेतृत्व नहीं प्रदान कर सकता है। उसका अपना महत्त्व है, मगर शीर्ष स्तर पर उसका काम केवल अकादमिक नेतृत्व की परख और विचारों के क्रियान्वयन तक ही सीमित हो सकता है। वर्ष 1965 के आस-पास के पाँच-दस वर्षों की स्थिति का जायजा लिया जाए तो स्पष्ट दिखाई देगा कि लगभग सभी स्कूल बोर्ड्स के अध्यक्ष अकादमिक लोग ही होते थे। राज्यों में शिक्षा निदेशक तक के पदों पर प्रतिष्ठित शिक्षाविद् नियुक्त होते थे। जैसे-जैसे राजनीतिक नेतृत्व की साख कमजोर हुई, नौकरशाही हावी होती गई और शिक्षा जगत के सभी महत्त्वपूर्ण पद नौकरशाहों के लिए सुरक्षित हो गए। इस समय पूरे देश में शिक्षा से जुड़े राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर के लगभग सभी संस्थानों के शीर्ष पदों पर नौकरशाह ही बैठे मिलेंगे। मैंने मानव संसाधन विकास मंत्रलय में राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् के अधिनियम निर्माण का उत्तरदायित्व संभाला था तथा पाँच वर्ष उसके पहले अध्यक्ष के रूप में उसे स्थापित किया था। दो वर्ष पहले वहाँ भी एक नौकरशाह की नियुक्ति होने पर शिक्षकों की दुनिया में जो हताशा की प्रतिक्रिया मैंने देखी वह आँखें खोलने वाली थी। सीबीएसई के वर्तमान अध्यक्ष के पास राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के अध्यक्ष का अतिरिक्त प्रभार भी कई महीनों से है। यह कोई अच्छी स्थिति नहीं है।

शिक्षा संस्थाओं को ऐसा नेतृत्व चाहिए जिसमें शिक्षा के प्रति पूर्ण समर्पण और प्रतिबद्धता का भाव हो जो यह मानता हो कि वह भारत के भविष्य निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। ऐसे व्यक्ति को संस्था में दृष्टिकोण परिवर्तन और कार्यसंस्कृति परिवर्तन के लिए स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करना होता है। जो लोग उसे संस्था में मिले हों, उन पर विश्वास करना होगा और अपने पर यह विश्वास रखना होगा कि वह इन्हें संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूर्णरूपेण समर्पित बना सकता है! इन संस्थाओं को ऐसे व्यक्ति चाहिए जो सामूहिकता में विश्वास रखते हों, मिलकर 'परिवर्तन' का अवलोकन करें, विश्लेषण करें, जो उपयोगी हो या आगे हो सकता हो, उस पर ध्यान केंद्रित करें। आवश्यक है संस्था के बुनियादी उद्देश्यों की गहरी समझ और पक्के आत्मविश्वास की। प्रेरणा, सम्मान और सहभागिता के साथ मिलकर शुरू किए नवाचारों से हर व्यक्ति की क्षमता और प्रतिबद्धता को बढ़ाया जा सकता है। हर सफल नेतृत्व इसी ढँग से संस्था की कार्यसंस्कृति को प्रभावोत्पादक बनाने में सफल रहा है। शैक्षिक नेतृत्व का सम्मान उसके योगदान तथा विद्वत्ता से होता है, न कि उसके ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हो जाने से। वह सम्मान की अपेक्षा नहीं करता है, वह तो उसे स्वत: ही मिल जाता है। वह जानता है कि लोगों को प्रभावित करने के लिए अपना उदाहरण ही सामने रखना होगा। वह निरंतर नवीन परिवर्तन में विश्वास रखता है। वह चुनौतियाँ स्वीकार करता है, नए समाधान मिलकर ढूँढ़ लेता है। अन्य को श्रेय देने में पीछे नहीं रहता है। उसके लिए संस्था का संचालन एक कला है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के सामने शीघ्र ही नई शिक्षा नीति का मसौदा आने वाला है। सीबीएसई प्रकरण की जाँच से भी नए तथ्य सामने आएंगे। नए निर्णय केवल एक संस्था के लिए ही नहीं, देशव्यापी स्तर पर शैक्षिक सुधारों को गति दे सकें, ऐसी सभी की अपेक्षा होगी। उसके लिए यह उचित अवसर है। यह भी आवश्यक है कि कुछ अवांछनीय तत्त्वों के लालच के कारण सीबीएसई की साख पर कोई बट्टा न लगे और देश उस पर गर्व करता रहे। ❑

(यूनेस्को में भारत के स्थायी प्रतिनिधि)

कन्या भ्रूण हत्या; अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न

❑ **डॉ. अनीता मोदी**

कैसी विडम्बना है कि जिस भारतीय संस्कृति में कन्या भ्रूण हत्या को 'महापातक' की संज्ञा दी गई है, वही समाज आज भ्रूण हत्या जैसा जघन्य, निन्दनीय व पाप कृत्य बिना किसी संकोच, भय, लज्जा व हिचक के अनवरत रूप से कर रहा है। नेशनल फैमिली हैल्थ सर्वे, सैम्पल रजिस्ट्रेशन सर्वे तथा इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पॉपुलेशन संस्थानों ने भी हाल ही में यह चौंकाने वाले आँकड़े बताये हैं कि 14 वर्षों में लगभग एक करोड़ लड़कियों की हत्या जन्म से पूर्व गर्भ में ही गैर-कानूनी ढंग से कर दी गई है। यह दर्दनाक किन्तु भयावह सत्य मानव अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगा रहा है। एक गैर-सरकारी सर्वेक्षण में यह अनुमान लगाया है कि भारत में प्रतिवर्ष लगभग 20 लाख कन्याओं को जन्म से पूर्व ही कत्ल कर दिया जाता है। 'चेतना' नामक संस्था ने कन्या भ्रूण हत्या की वीभत्स तस्वीर प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है कि प्रति वर्ष जन्म लेने वाली 120 लाख बालिकाओं में से 15 लाख बालिकाएँ प्रथम जन्मदिन तक जीवित नहीं रह पाती हैं। 85 लाख कन्याएँ 5 वर्ष पूर्व ही काल का शिकार बन जाती हैं तथा केवल 20 लाख कन्याएँ ही 15 वर्ष तक की आयु प्राप्त कर पाती हैं। एक गैर सरकारी संगठन ने सर्वेक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि देश में पिछले दो दशकों के दौरान लड़कियों की संख्या में एक करोड़ सैंतीस लाख की कमी दर्ज की गई है। यदि भविष्य में भी यही स्थिति कायम रही तो सम्भव है कि अगले एक दशक के पश्चात ढाई करोड़ लड़कों को जीवन-संगिनी नहीं मिल पाएगी।

हरियाणा राज्य में किए गए एक अनुसन्धान में यह तथ्य रेखांकित किया गया है कि अगर राज्य में लिंगानुपात गिरने की यही दर बनी रही तो अगले 25 वर्षों में 1000 पुरुषों पर केवल 500 महिलाएँ ही रह जायेंगी। यही नहीं, पंजाब जैसे विकसित व सम्पन्न राज्य में भी 16 लाख भाइयों को बहन नसीब नहीं है। विड़म्बना है कि विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्र भारत में कानूनी तौर पर भ्रूण की जाँच को अवैध घोषित करने के बावजूद खुले-आम भ्रूणों के परीक्षण का सिलसिला जारी है तथा मादा भ्रूणों की हत्याएँ डॉक्टर, नर्स व परिजनों के संयुक्त प्रयासों से बेहिचक की जा रही है।

कन्या भ्रूण हत्या जैसी ज्वलन्त समस्या के लिए अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक कारण जिम्मेदार हैं। गरीबी, दहेज प्रथा, पर्दा-प्रर्था, समाज में बालिकाओं को दोयम दर्जा, कन्या 'पराया धन' जैसी तुच्छ व संकीर्ण मानसिकता जैसे तत्त्व कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य

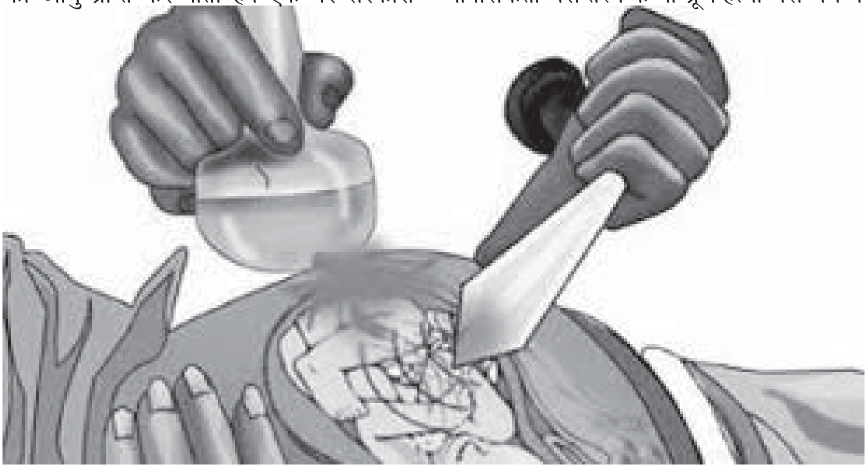

कन्या भ्रूण हत्या जैसी ज्वलन्त समस्या के लिए अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक कारण जिम्मेदार हैं। गरीबी, दहेज प्रथा, पर्दा-प्रर्था, समाज में बालिकाओं को दोयम दर्जा, कन्या 'पराया धन' जैसी तुच्छ व संकीर्ण मानसिकता जैसे तत्त्व कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य कृत्य को बढ़ावा दे रहे हैं। कन्या भ्रूण हत्या के मामलों में तेजी से वृद्धि हो रही है जो कि देश, समाज व परिवार के विकास के लिए खतरे की घण्टी है। समाज व परिवार की विकृत सोच व कन्याओं के प्रति असंवेदनशीलता की वजह से यह जघन्य कृत्य उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है जिस पर शीघ्र लगाम कसने की आवश्यकता है।

कृत्य को बढ़ावा दे रहे हैं। कन्या भ्रूण हत्या के मामलों में तेजी से वृद्धि हो रही है जो कि देश, समाज व परिवार के विकास के लिए खतरे की घण्टी है। समाज व परिवार की विकृत सोच व कन्याओं के प्रति असंवेदनशीलता की वजह से यह जघन्य कृत्य उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है जिस पर शीघ्र लगाम कसने की आवश्यकता है। दहेज प्रथा जैसी कुप्रथा के कारण भी कितनी ही बेटियों को कोख में ही समाप्त कर दिया जाता है जो कि सम्पूर्ण समाज के लिए शर्मनाक तथ्य है। इसी प्रकार, पुत्र प्राप्ति की आकाँक्षा, छोटे परिवार व अल्ट्रासाउण्ड तकनीक की सहज उपलब्धता कन्याओं के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा रही हैं। पुत्र की चाहत पूरा करने के लिए प्रतिवर्ष करीब चालीस लाख महिलाएँ अवैध गर्भपात करवाकर अपने जीवन को संकट में डालती हैं। इण्डियन मेडिकल ऐसोसिएशन (आईएमए) के अनुसार अब तक आँकड़ा पचास लाख को पार कर गया है।

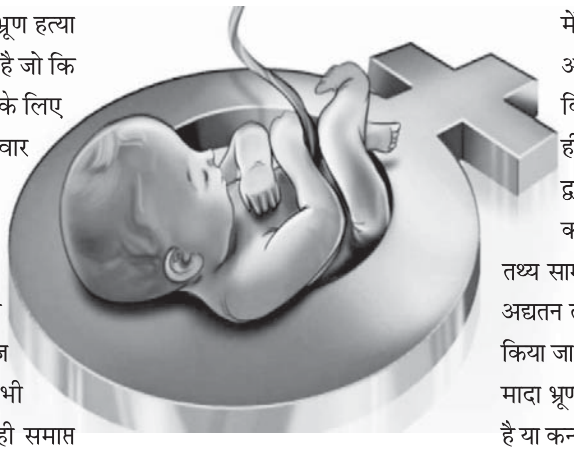

चिन्ता का विषय है कि घर के चिराग 'पुत्र' प्राप्ति के लिए कितने ही चिरागों की आहूति निर्ममतापूर्वक दे दी जाती है। बढ़ती कन्या भ्रूण हत्या के लिए मुख्य रूप से शिक्षा व जागरुकता का अभाव, पुत्र की लालसा, बढ़ती दहेज-प्रथा, संकीर्ण सामाजिक मानसिकता व आधुनिक तकनीक जिम्मेदार है। दुख का विषय है कि जनसामान्य अपने वंश की अभिवृद्धि व वंश का नाम चलाने के लिए तथा श्राद्ध व तर्पण जैसी आवश्यक क्रियाओं के सम्पादन हेतु एक पुत्र प्राप्ति के लिए कितनी ही कन्या भ्रूणों की बलि चढ़ा देता है। कन्या भ्रूण जैसे जघन्य अपराध को अंजाम देने से पूर्व उन्हें यह जरूर चिन्तन करना चाहिये कि लड़की जाति का भविष्य खतरे में डालकर वे स्वयं अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मार रहे हैं। स्त्री-पुरुष लिंगानुपात कम होने से न केवल चारित्रिक मूल्यों का ह्रास होगा वरन् एक बार पुन: बहुपति प्रथा का बोलबाला बढ़ जायेगा। समाज में अराजकता, हिंसा, बलात्कार वैमनस्य की भावनाएँ प्रबल हो जाने पर समाज अवनति के गर्त में डूब जायेगा। आज देश में बढ़ती बलात्कार की घटनाएँ आने वाले संकट की भविष्यवाणी कर रही हैं। यही नहीं, स्त्रियों की मान-मर्यादा की रक्षा करना चुनौतीपूर्ण व दुष्कर हो जायेगा। इन सब कारणों से स्त्रियों के लिए सफलता के सभी द्वार बंद हो जायेंगे जिससे देश के विकास को भी धक्का पहुँचेगा।

उल्लेखनीय है कि देश में प्रसव पूर्व निदान तकनीक (विनिमय एवं दुरुपयोग निवारण) अधिनियम 1994 के अनुसार 1 जनवरी 1996 से गर्भस्थ शिशु यानी भ्रूण की जाँच करने तथा भ्रूण के लिंग की जानकारी प्रदान करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया । यही नहीं, इसका उल्लंघन करने वालों के लिए सख्त दण्ड का प्रावधान भी किया गया है, लेकिन इसके बावजूद भी देश में मादा भ्रूण हत्या की भयावह तस्वीर देखने को मिलती है। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट में भी यह सच उजागर किया गया है कि एशिया में गर्भावस्था में बाल शिशुओं की अपेक्षा मादा शिशुओं का जीवन विश्व के मानदण्डों के अनुसार बहुत ही कम है। राष्ट्रीय महिला आयोग के द्वारा दिल्ली के चार झुग्गी-बस्तियों में कराये गये सर्वेक्षण के दौरान भी यह तथ्य सामने आया है कि अल्ट्रासाउण्ड जैसी अद्यतन तकनीक का वृहद् स्तर पर दुरुपयोग किया जा रहा है। इस जांच के पश्चात या तो मादा भ्रूण को मौत की नींद सुला दिया जाता है या कन्या होने पर गर्भवती महिलाएँ खान-पान, स्वास्थ्य, रहन-सहन आदि सभी मामलों में भेदभाव का दंश झेलती हैं।

ऐसा अनुमान व्यक्त किया गया है कि राजस्थान के बाड़मेर एवं जैसलमेर, बिहार की पूर्णिया, सीतामढ़ी व भागलपुर, तमिलनाडु के सेलम तथा पंजाब व हरियाणा के कुछ राज्यों में कन्या भ्रूण हत्या को बिना किसी संवेदना तथा हिचकिचाहट के अंजाम दिया जा रहा है। यही कारण है कि इन राज्यों में शिशु लिंगानुपात निरन्तर कम होता जा रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार देश में प्रतिवर्ष लगभग 2.90 लाख कन्याएँ जन्म लेने से पूर्व ही मौत के घाट उतार दी जाती है। इस प्रकार से गत दस वर्षों में लगभग 1.50 करोड़ कन्याएँ गर्भ में ही मौत का शिकार बन गई।

कन्या भ्रूण हत्या के विकराल व भयावह दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के निकटवर्ती क्षेत्रों में एक से अधिक भाइयों के बीच एक पत्नी का पाया जाना सामान्य सी बात हो गई है। यही नहीं इसकी वजह से एक भाई के द्वारा दूसरे भाई की हत्या जैसी अमानवीय घटनाएँ भी घटित हो रही हैं। हरियाणा व पंजाब जैसे विकसित राज्यों में तो स्थिति इतनी विकट हो गई है कि बड़ी संख्या में लोग पत्नियों को खरीदने के लिए मजबूर हैं। गौरतलब है कि यदि कन्या भ्रूण हत्या की यह प्रवृति

अविराम जारी रही तो समाज में कई प्रकार की विसंगतियाँ, सामाजिक मूल्यों में गिरावट तथा समाज का अधोपतन जैसे चिन्ताजनक परिणाम सामने आयेंगे।

अत: बढ़ती कन्या भ्रूण हत्या की रोकथाम के लिए सरकार, डॉक्टर, नर्स, नारी, जनसामान्य व स्वयंसेवी संगठनों सभी का सक्रिय व प्रभावी सहयोग अपेक्षित व आवश्यक है। नारी शक्ति की सहभागिता व सहयोग के बिना कन्या भ्रूण संरक्षण किया जाना संभव नहीं है। यदि नारी दृढ़ संकल्पित हो जाय तो कन्या भ्रूण हत्या को रोका जाना संभव है। केवल कानून बनाकर ही इस पाप को रोका जाना संभव नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि कानून के क्रियान्वयन में सख्ती व शीघ्रता बरती जाये। इस पाप में लिप्त डॉक्टर, नर्स व परिजन, सभी को दोषी करार करते हुए कड़ी सजा दी जाय ताकि अन्य लोग इस दुष्कर्म के लिए प्रवृत्त नहीं हों। यही नहीं, इस काले धन्धे में लिप्त डॉक्टरों का रजिस्ट्रेशन रद्द करने व उनके अस्पतालों व क्लीनिकों पर ताला लगाने जैसे कठोर कदम उठाने में कोताही नहीं बरतनी चाहिए। इसके साथ ही सोनोग्राफी केन्द्रों पर कड़ी निगरानी हेतु अलग प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए ताकि जनसामान्य भ्रूण के लिंग-परीक्षण हेतु प्रोत्साहित नहीं हो।

कन्या-भ्रूण संरक्षण के लिए समाज में पुत्र-पुत्री के भेद को दूर करने के लिए जागृति उत्पन्न करना व समाज की संकीर्ण मानसिकता में परिवर्तन करना जरूरी है। कन्या-भ्रूण संरक्षण की भावना को जन-जन तक पहुँचाने में पोस्टर, बैनर, होर्डिंग, केबल टी.वी. रेडियो, समाचार-पत्र व मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। कई बार शब्दों की अपेक्षा चित्र अधिक प्रभावी होते हैं, इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कन्या भ्रूण संरक्षण, इसकी आवश्यकता व महत्त्व से संबंधित पोस्टर, स्लोगन आदि से सुसज्जित प्रदर्शनियों का आयोजन भी किया जा सकता है। नाटक, स्टेज शो, नृत्य-नाटिका, नुक्कड़ नाटक आदि के मंचन के माध्यम से भी कन्या भ्रूण संरक्षण की विचारधारा को बल मिलेगा। स्काउट, एन.सी.सी., एन.एस.एस. व स्कूली छात्राओं आदि का सक्रिय सहयोग लेकर भी इस कार्य में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जा सकती है। कन्या भ्रूण हत्या के खिलाफ माहौल बनाने व जन-जागरूकता उत्पन्न करने के लिए जनचेतना रैली का आयोजन किया जाना चाहिये। इसी भांति, कन्या भ्रूण संरक्षण से संबंधित सामाजिक, चिकित्सकीय, कानूनी व अन्य पहलुओं पर विचार विमर्श के लिए संगोष्ठी, बैठकों व कार्यशालाओं का आयोजन समय-समय पर किया जाना आवश्यक है।

'लड़की बोझ है' इस तुच्छ मानसिकता को बदलने के लिए यह जरूरी है कि लड़कियों को भी शिक्षित करके उन्हें आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाने का प्रयास किया जाय। ऐसा करने पर कन्या बोझ नहीं वरन् वरदान साबित होगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार व एनजीओ को बालिका शिक्षा व महिला रोजगार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को प्राथमिकता देनी चाहिये। जरूरतमंद बालिकाओं को शिक्षा हेतु स्कॉलरशिप का प्रावधान किया जाना चाहिये व विभिन्न शैक्षणिक उपलब्धियाँ प्राप्त बालिकाओं का सम्मान व बराबरी का दर्जा हासिल होगा और महिला सशक्तीकरण का मार्ग प्रशस्त होगा। 'कन्या-भ्रूण हत्या मानवता के विरुद्ध सबसे बड़ा अपराध है' इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए इस समस्या के समाधान के लिए प्रभावी रणनीति बनाकर ईमानदारी व निष्ठा से उसका क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। हमें इस तथ्य को भी नहीं भूलना चाहिए कि कन्या-भ्रूण हत्या महिला के जीवन पर अतिक्रमण है, हमला है, महिला के अस्तित्व पर सवालिया निशान है। अत: महिलाओं के विकास को वास्तविक रूप से प्राप्त करना तभी संभव है जब महिलाओं के अस्तित्व को सुरक्षा व संरक्षण का कवच जन्म से पूर्व तथा जन्म के पश्चात भी प्राप्त हो, अन्यथा महिला विकास का दावा दिवा-स्वप्न मात्र बनकर रह जायेगा। ❑

(प्रवक्ता-अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, खेतडी, राजस्थान)

जन्म दिवस पर विशेष

महामहोपाध्याय डॉ.पाँडुरंग वामन काणे

❑ विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

पाँडुरंग वामन काणे के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता है कि इन्होंने धर्म भीरूता को नकार कर धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि देने का प्रयास किया है। वामन काणे ने छुआछूत का विरोध किया तो अंतर्जातीय और विधवा विवाह का समर्थन किया है। असम्मानजनक स्थिति में महिलाओं द्वारा तलाक लेने के अधिकार की वकालत की है। पाँडुरंग वामन काणे का कहना है कि हिन्दू धर्म के मूल में राष्ट्रीयता, लोकतंत्र और विश्वबंधुत्व की भावना है। डॉ. पाँडुरंग वामन काणे रूढ़िवादी नहीं होकर समय के साथ धर्म में परिवर्तन के पक्षधर रहे हैं। डॉ. पाँडुरंग वामन काणे की पुस्तकें आज देश के प्रमाणिक ग्रन्थ बन गए हैं। देश में धर्म-आचरण का कोई विवाद उत्पन्न होने पर उनकी पुस्तकों को देख कर ही विवाद निपटाए जाते हैं।

भारत देश के सन्दर्भ में कही गई सर्वाधिक लोकप्रिय पंक्ति को खोजने का प्रयास किया जाय तो सबसे पहले जो पंक्ति उभर कर आएगी वह है-'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'। इस पंक्ति में छुपे प्रश्न का उत्तर भिन्न भिन्न समय पर लोग अपने अपने दृष्टिकोण से देते रहे हैं। इस प्रश्न का सही उत्तर खोजना है तो हमें महामहोपाध्याय पाँडुरंग वामन काणे द्वारा रचित महान ग्रन्थ धर्मशास्त्र का अध्ययन करना होगा। यहाँ हमारी हस्ती का अर्थ भारतीय संस्कृति से है। भारतीय संस्कृति का संरक्षक धर्म रहा है। धर्म के लिए अंग्रेजी में कोई शब्द नहीं है। जब धर्म की बात आती है तो संस्कृत भाषा के बिना काम नहीं चल सकता। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में भी हमें डॉक्टर पाँडुरंग वामन काणे को ही याद करना होगा।

जीवन परिचय

पाँडुरंग काणे का जन्म महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के दापोली गाँव में हुआ था। पाडुरंग के पिता श्री वामन राव चितपावन ब्राह्मण थे। श्री वामन राव पुरोहिताई के साथ वकालत का कार्य भी करते थे। पाँडुरंग काणे का परिवार वैदिक संस्कृति में समृद्ध था। पाँडुरंग ने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल से प्राप्त की तथा अपने परिवार से वैदिक ज्ञान भी प्राप्त करते रहे। पाँडुरंग ने हाईस्कूल की परीक्षा में पूरे जिले में 23वाँ स्थान प्राप्त किया था। स्नातक की परीक्षा में संस्कृत विषय में विशेष योग्यता होने के कारण पाँडुरंग को 'भाऊदाजी संस्कृत पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। शैक्षिक योग्यता के आधार पर उन्हें 'विल्सन कॉलेज' में दो वर्ष के लिए फैलोशिप प्रदान की गई थी। पाँडुरंग ने प्रथम श्रेणी में एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। पाँडुरंग ने संस्कृत और अंग्रेजी विषय से प्रथम श्रेणी में एम.ए. की परीक्षा उतीर्ण की। इसी समय उन्हें 'वेदांत पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

परिवार की आर्थिक स्थिति को देखते हुए पाँडुरंग वामन काणे रत्नागिरि के स्कूल में अध्यापन का कार्य करने लगे थे। साथ साथ अध्ययन और

(7 मई, 1880 - 18 अप्रैल, 1972)

शिक्षक-प्रशिक्षण लेते रहे। शिक्षा विभागीय परीक्षाओं में प्रांत स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त करने पर पाँडुरंग काणे को सहायक जिला शिक्षाअधिकारी के पद पर नियुक्त किया गया। पाँडुरंग को लगा कि शिक्षाअधिकारी के पद पर रहते वे अपना अध्ययन और शोध कार्य ठीक से नहीं कर पाएँगे। पाँडुरंग ने पद अस्वीकार कर दिया। संस्कृत में 'अलंकार साहित्य का इतिहास' विषय पर शोध कार्य पूरा होने पर पाँडुरंग काणे को 'वी.एन. मॉडलिंग स्वर्ण पदक' से सम्मानित किया गया।

मुंबई के एलफिंस्टन कॉलेज में संस्कृत के मुख्य अध्यापक बनने पर पाँडुरंग काणे 'प्राचीन भारतीय साहित्य' पर शोध करते रहे। पाडुरंग को एक बार फिर 'वी.एन.मॉडलिंग स्वर्ण पदक' से सम्मानित किया गया। प्रथम श्रेणी में एल.एल.बी. करने बाद जब इन्हें लगा कि एलफिंस्टन कॉलेज में योग्यता का सही उपयोग नहीं हो रहा है तो त्यागपत्र देकर वकालत करने लगे थे। वकालत के साथ-साथ वे संस्कृत भाषा और प्राचीन भारतीय संस्कृति पर शोध कार्य करते रहे। अवसर मिलने पर इन विषयों से सम्बन्धित व्याख्यान भी देते रहे। इससे पाँडुरंग काणे की पहचान संस्कृत के विद्वान के रूप बनने

लगी थी। डॉ.पाँडुरंग वामन काणे ने देश के विभिन्न संस्थानों में उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों जैसे महाभारत, पुराण, चाणक्य आदि का गहन अध्ययन किया। संस्कृत के विशद ज्ञान के कारण वे सब बातों को पूर्णता से समझ पाए। भण्डारकर संस्थान जहाँ पाँडुरंग ने अध्ययन किया।

साहित्य सृजन

पाँडुरंग वामन काणे अपने ज्ञान का लाभ भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित करने लिए विपुल साहित्य का सृजन किया। 'धर्मशास्त्र का इतिहास' इनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। 6500 पृष्ठों में फैला यह ग्रन्थ पाँच भागों में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथ को भारतीय धर्मशास्त्र का विश्वकोश माना जाता है। इसमें ईसा पूर्व 600 से लेकर 1800 ईस्वी तक के भारत की विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पाँडुरंग वामन काणे के लेखन की सबसे बड़ी विशेषता है कि इन्होंने धर्म भीरुता को नकार कर धर्म को वैज्ञानिक दृष्टि देने का प्रयास किया है। वामन काणे ने छुआछूत का विरोध किया तो अंतर्जातीय और विधवा विवाह का समर्थन किया है। असम्मानजनक स्थिति में महिलाओं द्वारा तलाक लेने के अधिकार की वकालत की है। पाँडुरंग वामन काणे का कहना है कि हिन्दू धर्म के मूल में राष्ट्रीयता, लोकतंत्र और विश्वबंधुत्व की भावना है। डॉ.पाँडुरंग वामन काणे रूढ़िवादी नहीं होकर समय के साथ धर्म में परिवर्तन के पक्षधर रहे हैं। डॉ.पाँडुरंग वामन काणे की पुस्तकें आज देश के प्रामाणिक ग्रन्थ बन गए हैं। देश में धर्म–आचरण का कोई विवाद उत्पन्न होने पर उनकी पुस्तकों को देख कर ही विवाद निपटाए जाते हैं।

सम्मान

डॉ.पाँडुरंग वामन काणे को देश में बहुत सम्मान मिला है। इन्हें महामहोपाध्याय, अर्थात् आचार्यों के आचार्य, की उपाधि से अलंकृत किया गया है। डॉ.पाँडुरंग को मुंबई विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनाया गया। भारतशास्त्र के अध्ययन हेतु कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की स्थापना में इनसे सहयोग माँगा गया। 'धर्मशास्त्र का इतिहास' पुस्तक पर इन्हें साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया। भारतीय विद्याभवन का मानद सदस्य घोषित किया गया। दो बार राज्यसभा में सासंद मनोनीत किया गया। 1963 में देश के सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न से सम्मानित किया गया। मुंबई की ऐसियाटिक सोसाइटी ने प्राचीनशास्त्र के अध्ययन हेतु महामहोपाध्याय डॉ.पी.वी.काणे अधिस्नातक अध्ययन सस्थान की स्थापना की है। वैदिक, धर्मशास्त्र या अलंकार साहित्य में श्रेष्ठ प्रदर्शन पर तीन वर्ष में एकबार महामहोपाध्याय डॉ.पी.वी.काणे स्वर्ण पदक प्रदान किया जाता।

देश हित सर्वोपरि

डॉ.पी.वी.काणे का मानना है कि भारतीय संविधान ने देश को भारतीय परम्पराओं से काट दिया। संविधान से यह ध्वनित होता है कि नागरिकों के अधिकार तो हैं मगर देश के प्रति उनका कोई कर्तव्य नहीं है। संविधान की इस कमी को नागरिकों के कर्तव्य जोड़ कर पूरा करने का प्रयास किया गया मगर बात पूरी बनी नहीं है। देश को बरबाद करने, देश के टुकड़े करने के नारे आज भी उच्च शिक्षा संस्थानों में सुनाई देते हैं। यह संविधान की कमी को दर्शाता है। डॉ.पी.वी.काणे के जन्मदिन पर, देश के हित में कार्य का संकल्प ही, उन्हें सही श्रद्धांजलि हो सकती है।❑

(बाल साहित्य एवं विज्ञान विषयक लेखक)

Sant Gadge Baba Amravati University Organized a Special Meet

Newly framed Maharashtra Public Universities Act 2016 was brought into force onAugust 2016. The full implementation of the this act was in need of statutes. These statutes will direct how the law is to be implemented.Accordingly, to frame Uniform Statutes, a committee was constituted by Government of Maharashtra under the chairmanship of former North Maharashtra University Vice Chancellor Dr. R. S. Mali. Recently, this committee has released draft of Uniform Statutes governing terms and conditions of service of teachers working in university schools, university departments, condstituent colleges and affilited university institutions. Committee sought suggestions from all the stakeholder by public announcement. In view of this, Sant Gadge Baba Amravati University Shikshan Manch, Amravati has organized a special Consultation Meet on Scouting of Suggestions on draft of Uniform Statutes. The meeting was held on Tuesday, 10 April 2018 at Raman Hall, Govt. Vidarbha Institute of Science and Humanities, Amravati. This scouting meet was inaugurated at the hands of Dr. Archana Nerkar, Joint Director (Higher Education), Amravati Division, Amravati. Chief Guest for the meet were Dr. V. S. Sapkal, Member, Uniform Statutes Committee and Dr. Ajay Deshmukh, Registrar, Sant Gadge Baba Amravati University, Amravati. Dr. Dinesh Suryavanshi, Chancellor's Nominee on Management Council of Sant Gadge Baba Amravati University has presented opening remarks for the meeting. Inaugurator and Chief Guests delivered felicitous addresses. The meeting was presided by Prof. Pradip Khedkar, President, Sant Gadge Baba Amravati University Shikshan Manch, Amravati.

Dr. V. S. Sapkal monitored complete meeting, examined suggestions came from different stakeholders and furnished contextual elaborations to the provisions made in the draft statutes. Major agreeable suggestions were compiled and submitted to the committee for further considerations. The meeting was of it on kind of activities conducted by any organizations working in Maharashtra and therefore, the present attempt was highly appreciated by every observer from the field of education.

युवा आदर्श : स्वामी विवेकानन्द

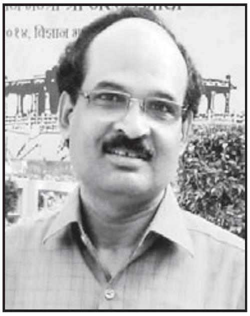

भारत की आध्यात्मिक शक्ति के पुनर्जागरण और भारत के पुनर्निमाण का लक्ष्य लेकर स्वामीजी ने लगभग एक वर्ष तक कोलम्बो से अलमोड़ा और बाद में दूर उत्तर राजस्थान तक की यात्रा करते हुए आह्वान किया -'दुर्बलताओं और अंधविश्वासों को उखाड़ फैंको और नए भारत का निर्माण करो। भारत के सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन के संगीत का मूल स्वर धर्म है, यही धर्म विश्व को आध्यात्मिक एकात्मकता का उपदेश देगा। उन्होंने सिंहनाद किया-'भारत उठो! अपनी आध्यात्मिकता से सारे संसार को जीत लो।' स्वामी विवेकानन्द कहते हैं -'इस राष्ट्र का प्राण कहाँ है? वह धर्म में है। कोई उसको नष्ट नहीं कर पाया, इसीलिए हिन्दू जाति इतनी आपत्ति- विपत्तियों को सहकर भी आज जीवित है।'

❑ **उमेश कुमार चौरसिया**

'उठो! जागो!...और लक्ष्य प्राप्ति तक रुको मत!' भारत की आध्यात्मिक शक्ति, सनातन धर्म और भारतीय संस्कृति का गौरव विश्वभर में स्थापित करते हुए मानवता के कल्याण और राष्ट्र पुनरुत्थान के प्रति जीवन समर्पित कर देने वाले युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द का यह हृदयभेदी आह्वान आज भी युवा पीढ़ी को प्रेरणा दे रहा है। भारत की स्वाधीनता के क्रांतिवीर सुभाषचन्द्र बोस कहते थे कि स्वामी विवेकानन्द के लिए धर्म ही राष्ट्रवाद का प्रेरक था। उन्होंने भारत की नयी पीढ़ी में अपने अतीत के प्रति गर्व, भविष्य के प्रति विश्वास और स्वयं में आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की भावना जगाने का प्रयास किया। आयु में कम परन्तु ज्ञान में असीम स्वामी विवेकानन्द ने 40 वर्ष से भी कम के जीवनकाल में वह कर दिखाया जो कई सौ वर्ष की उम्र लेकर भी किया जाना संभव नहीं लगता। सनातन हिन्दू धर्म और वेदान्त के गौरव को पहली बार न केवल विश्व पटल पर प्रस्तुत किया वरन् भारतीय अध्यात्म और दर्शन की महत्ता के समक्ष सबको नतमस्तक भी कर दिया। अपनी ओजस्वी वाणी में सिंहनाद करते हुए विवेकानन्द ने भूखे-दरिद्रों का देश कहे जाने वाले भारत को विश्व के आध्यात्मिक गुरु की प्रतिष्ठा दिलायी और भारत की श्रेष्ठता के प्रति भारतवासियों का आत्मविश्वास बढ़ाया।

भारत की वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखें तो स्वामी विवेकानन्द के संदेशों की प्रासंगिकता और भी बढ़ गयी है। विवेकानन्द का कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ है। वे कहते भी थे-'मैंने अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया है और अपना सम्पूर्ण जीवन उसके लिए समर्पित कर दिया है। यदि मैं सफलता प्राप्त नहीं कर पाता तो उसे पूरा करने के लिए कोई अन्य आयेगा।' फिर जब विचार आता है कि आखिर स्वामीजी के शेष कार्य करने वाले लोग कहाँ से आएंगे? तब उसका प्रत्युत्तर भी स्वामीजी के आह्वान में ही मिलता है। वे कहते हैं-'मनुष्यों की, केवल मनुष्यों की आवश्यकता है और सब कुछ हो जाएगा, किन्तु आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रीसम्पन्न और पूर्ण प्रामाणिक नवयुवकों की। मेरी आशाएँ इस नवोदित पीढ़ी में, आधुनिक पीढ़ी में केन्द्रित हैं। उसी में से मेरे कार्यकर्त्ता आएंगे और वे सिंह के समान सारी समस्या को हल कर देंगे।'

कोलकाता उच्च न्यायालय के अटार्नी विश्वनाथ दत्त और धार्मिक प्रवृत्ति वाली सरल महिला भुवनेश्वरी देवी के कुलीन व प्रतिष्ठित परिवार में सोमवार 12 जनवरी 1863, पौष कृष्ण सप्तमी विक्रम संवत् 1919, मकर संक्रांति के पावन दिवस पर जन्मे विवेकानन्द के बचपन का नाम था-नरेन्द्रनाथ दत्त। माता भुवनेश्वरी देवी का ऐसा विश्वास था कि उन्हें यह पुत्र काशी के वीरेश्वर शिव के अनुग्रह से प्राप्त हुआ है, इसलिए उन्होंने पुत्र का नामकरण वीरेश्वर किया और घर में सभी उन्हे 'बिले' कहकर पुकारते थे। उत्साही और तेजस्वी बालक नरेन्द्र की बचपन से ही संगीत, नाटक, व्यायाम और खेल-कूद में विशेष रुचि थी। खेल-खेल में वे राम, सीता, शिव आदि की मूर्तियों के समक्ष बैठकर ध्यान में मग्न हो जाया करते थे। दरिद्रों और साधुओं के प्रति दया व सहानुभूति उनके स्वभाव में ही थी। बड़े होने पर यह भावना और भी बढ़ी। वे कहा करते थे-'तुमने पढ़ा होगा' मातृ देवो भव, पितृ देवो भव अर्थात् माता और पिता को भगवान समझो, किन्तु मैं कहता हूँ 'दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव', इन गरीबों , अनपढों, अज्ञानियों और दुखियों को ही अपना भगवान मानो। नर सेवा ही नारायण सेवा है।

विद्यार्थी जीवन में किसी भी बात को तर्क के बिना स्वीकार नहीं करने की प्रवृत्ति और भजन-संगीत की रुचि के कारण वे बहुत प्रसिद्ध हो गए। फुटबॉल उनका प्रिय खेल था। अध्ययनशील तो वे थे ही। एक ओर तो उनकी अध्यात्म की प्रवृति और प्राचीन धार्मिक परम्पराओं व विश्वासों के प्रति सम्मान, तो दूसरी ओर तर्क करने के स्वभाव के साथ-साथ कुशाग्र बुद्धि प्रतिभा। तब इन दोनों में कहीं संघर्ष होने लगा था। ऐसी विकट मन:स्थिति में उनका झुकाव निराकार ब्रह्म को मानने वाले ब्रह्मसमाज की ओर हो गया। इसी समय नरेन्द्र के युवा मन में ईश्वर के अस्तित्व को लेकर प्रश्न उठा-'क्या सच में ईश्वर है?' अनेक विद्वत्जनों-सन्यासियों से सम्पर्क किया पर प्रश्न का तार्किक उत्तर न मिलने से उनकी बेचैनी बढ़ती गयी। तभी अध्यापक विलियम हेस्टी ने उन्हें दक्षिणेश्वर के संत श्रीरामकृष्ण परमहंस से मिलने की सलाह दी। ठाकुर के नाम से लोकप्रिय श्रीरामकृष्ण

से मिलने के लिए नरेन्द्र के मन में तीव्र उत्कंठा उत्पन्न हुई और संभवतः इसी कारण सन् 1881 में कोलकाता में मित्र सुरेन्द्रनाथ के आवास पर श्रीरामकृष्ण से भेंट हो ही गयी। नरेन्द्र ने पूछा- 'क्या आपने ईश्वर को देखा है?' तो एक पल का भी विलम्ब किये बिना ठाकुर ने हँसते हुए उत्तर दिया-'हाँ, मैंने ईश्वर को वैसे ही देखा है जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ।' ऐसा सहज-सपाट उत्तर सुनकर नरेन्द्र अचंभित हो गए। उन्हें विश्वास हो गया कि ठाकुर ही ईश्वर से उनका साक्षात्कार करवा सकते हैं। बस नरेन्द्र तभी से ठाकुर के शिष्य हो गए।

1984 में नरेन्द्र के पिता का निधन हो गया तब उनके परिवार को अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। परिवार को कष्ट में देखकर नरेन्द्र ने ठाकुर से सहायता माँगी, ठाकुर ने माँ काली से प्रार्थना करने का उपाय बताया। किन्तु नरेन्द्र तीन बार माँ काली के समक्ष जाकर भी अपने परिवार के पालन-पोषण का व्यक्तिगत अनुनय नहीं कर पाये, उन्होंने माँगा जनकल्याण के लिए केवल ज्ञान, वैराग्य और भक्ति। ठाकुर ने उन्हें ज्ञान और अध्यात्म की अनुभूति करवाई, नरेन्द्र मन-प्राण से गुरुभक्ति में लीन हो गए और श्रीरामकृष्ण के सबसे प्रिय शिष्य बन गए। सन् 1885 में ठाकूर को कैंसर हो गया तब नरेन्द्र ने अपने गुरुभाइयों के साथ दिन-रात ठाकुर की सेवा-सुश्रूषा की। एक दिन नरेन्द्र ने ठाकुर के समक्ष मोक्ष प्राप्ति हेतु निर्विकल्प समाधि में जाने की इच्छा व्यक्त की तो वे बोले -'नरेन, तुम केवल अपनी मुक्ति की इच्छा रखते हो? तुम्हें तो विशाल वटवृक्ष की तरह बनना पड़ेगा, जिसकी छाया में समस्त पृथ्वी के मनुष्य शान्ति प्राप्त कर सकें।' बाद में ध्यान-साधना करते हुए नरेन्द्र को माँ काली की शक्ति और स्नेह का प्रत्यक्ष अनुभव भी हुआ।

16 अगस्त, 1886 को श्रीरामकृष्ण का देहान्त हो जाने के कुछ दिन बाद नरेन्द्र ने बहुत से युवा शिष्यों का नेतृत्व करते हुए बारहनगर में 'रामकृष्ण मठ' की नींव रखी। वहाँ घोर तपस्या, ध्यान, भजन, शास्त्रचर्चा इत्यादि का क्रम अनवरत चलता रहा। 1887 के जनवरी माह में नरेन्द्र ने अपने दस गुरुभाइयों के साथ संन्यास-व्रत का संकल्प लिया, स्वयं का नाम स्वामी 'विविदिशानन्द' ग्रहण किया और जीवन ध्येय पाने की घोर पिपासा लिये परिव्राजक संन्यासी के रूप में भारत-भ्रमण के लिए निकल पड़े। देशाटन के दौरान उन्होंने पाया कि यह राष्ट्र श्रीरामकृष्ण के जीवन का प्रतिबिम्ब जैसा ही है। जो धर्म ठाकुर का प्राण रहा, वही धर्म भारत की आत्मा है। अध्यात्म भारत का विशिष्ट गुण है। स्वामी विविदिशानन्द, स्वामी सच्चिदानन्द जैसे अनेक नाम धारण करते हुए उन्होंने उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, केरल, मद्रास और हैदराबाद में विभिन्न ऐतिहासिक व तीर्थ स्थलों का भ्रमण किया। भारत के लोगों की गरीबी, अशिक्षा और स्त्रियों की दुर्गति को निकट से देखा। इस विकट स्थिति से बाहर निकलने का मार्ग क्या है? कैसे भारत का उत्थान हो? वे इसके लिए क्या करें? ऐसे अनेक प्रश्न उन्हें विचलित करते रहे।

भ्रमण के अन्तिम चरण में वे कन्याकुमारी पहुँचे। वहाँ उन्हें लगा कि समुद्र के मध्य में स्थित श्रीपाद् शिला (जहाँ स्वयं माँ जगदम्बा ने अपने चरण चिन्ह छोड़े) उन्हें आकर्षित कर रही है। मानो माँ जगदम्बा उन्हें पुकार रही है। समुद्री हिंसक पशुओं की परवाह न करते हुए वे कूद गए विशाल समुद्र में और लहरों को चीरते हुए पहुँच गए श्रीपाद शिला पर। वहीं पर बैठकर स्वामीजी 25, 26 व 27 दिसम्बर, 1892 को लगातार तीन दिन-तीन रात भारत के करोड़ों देशवासी भाई-बहनों के दुःख के निवारण और भारत के उत्थान के लिए ध्यान-चिन्तन करते रहे। उन्होंने अनुभव किया कि अपनी एकात्मता की आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करके ही भारत पुनरुत्थान कर सकता है। उन्हें अब अपने जीवन का लक्ष्य मिल गया था। वहीं उन्होंने भारत की धार्मिक परम्परा और

गौरवशाली संस्कृति को विश्वभर में फैलाकर भारतीयों के आत्मविश्वास को पुनर्जाग्रत करने हेतु पश्चिम की ओर जाने का निर्णय भी लिया। आलासिंगा पेरूमल इत्यादि शिष्यों ने यात्रा की तैयारियाँ आरंभ कर दीं। तभी स्वामीजी को राजस्थान में खेतड़ी के महाराज अजीतसिंह का निमंत्रण मिला। महाराज ने उनका मन:पूर्वक स्वागत-सत्कार किया और पश्चिम की यात्रा हेतु यथासंभव सहयोग देने का वचन भी दिया। महाराज के आग्रह पर ही स्वामीजी ने 'विवेकानन्द' नाम को अपनाया और चिरपरिचित गुलाबी पगड़ी तथा चोगे की वेशभूषा को भी धारण किया। कन्याकुमारी समुद्रमध्य स्थित जिस श्रीपाद् शिला पर स्वामीजी ने चिन्तन किया वहीं पर श्री एकनाथ रानाडे के सतत् प्रयत्नों से भव्य-दिव्य 'विवेकानन्द शिला स्मारक' का निर्माण हुआ, जो आज जन-जन को स्वामी विवेकानन्द के जीवन-संदेशों पर चलने की प्रेरणा दे रहा है।

पश्चिम की यात्रा के लिए स्वामी विवेकानन्द पानी के जहाज से रवाना हुए और चीन, जापान और कनाडा होते हुए जुलाई 1893 में अमेरिका के शहर शिकागो पहुँचे। वहाँ पता चला कि वे जिस विश्व धर्म संसद में भाग लेने के लिए आए हैं वह तो सितम्बर में होगी और बिना अधिकृत पहचान-पत्र के उन्हें प्रवेश भी नहीं मिल सकेगा। न तो पास में धन और न ही परदेस में किसी से पहचान। स्वामीजी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। तीन माह रहने-खाने का प्रबन्ध कैसे होगा? परिचय-पत्र कहाँ से मिलेगा? वहाँ भारी कष्ट और अपमान सहना पड़ा स्वामीजी को। पर कहते हैं ना कि ईश्वरीय सत्कार्य के लिए ईश्वरीय सहायता मिल ही जाती है। श्रीमती कैथरीन, प्रो.जॉन हैनरी राइट और श्रीमती जार्ज डब्ल्यू हेल इत्यादि के अप्रत्याशित सहयोग से अंतत: स्वामीजी को धर्मसंसद पहुँचने की राह मिल ही गयी।

विश्व धर्मसंसद 11 सितम्बर, 1893 को प्रारम्भ हुई। मंच पर विश्व के कोने-कोने से हर संगठित धर्म के प्रतिनिधि उपस्थित थे। अपनी बारी आने पर स्वामी विवेकानन्द ने मन ही मन वाणी-विद्या की देवी माँ शारदे को नमन किया और भाषण को इन शब्दों से शुरू किया-'अमेरिका निवासी मेरी बहनो और भाइयो...!' इस आत्मीयतापूर्ण सम्बोधन को सुनकर तत्काल ही सात हजार श्रोतागण उनके सम्मान में खड़े हो गए और बहुत देर तक सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूँजता रहा। स्वामीजी का प्रभावशाली व्यक्तित्व और उनके तेजस्वी मुखमण्डल से सब इतने प्रभावित हुए कि अब तक अपिरिचित स्वामीजी के लिए अगले दिन समाचार पत्रों में लिखा गया कि विवेकानन्द धर्मसंसद की महाश्रम विभूति हैं। स्वामीजी के इस पहले संक्षिप्त भाषण ने ही इतनी ख्याति दिला दी कि शिकागो के विशिष्ट गणमान्य व्यक्तियों ने उन्हें अपने घर पर आमन्त्रित करना आरम्भ कर दिया। पहले दिन एक करोड़पति के विशाल भवन में उनका राजसी स्वागत हुआ। विश्वभर की तमाम सुख-सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध। किन्तु स्वामीजी को न तो नाम की भूख थी, ना भौतिक संसाधनों की चाह। वे रातभर नीचे जमीन पर पड़े यही सोचकर बिलखते रहे कि 'मेरे भारतवासी भाई-बहनों के कष्ट कब दूर होंगे'। ऐसा था स्वामीजी का भारत और भारतवासियों के प्रति प्रेम। वे सदैव कहते रहे -'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं। भारतवर्ष का समाज मेरे बचपन का झूला, मेरे यौवन की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है।... भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।' भारत की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं- 'यदि इस पृथ्वीतल पर कोई ऐसा देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है; ऐसा देश, जहाँ संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना ही है; ऐसा देश जहाँ ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पहुँचना अनिवार्य है; ऐसा देश जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शान्ति का चरम शिखर स्पर्श किया हो तथा इस सबसे आगे बढ़कर जो देश अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का घर हो, तो वह देश भारत ही है।'

27 सितम्बर तक चली धर्मसंसद में लगभग प्रतिदिन स्वामी विवेकानन्द ने प्रभावी भाषण दिए, उन्हें सुनने के लिए लोग लालायित रहते थे। धर्मसंसद समाप्त होने के साथ ही अमेरिका के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में स्वामीजी के व्याख्यान होने लगे। उन्होंने वहाँ 'वेदान्त सोसायटी' स्थापित की और नि:शुल्क वेद कक्षाएँ लेना भी प्रारंभ कर दिया। 'राजयोग' का लेखन भी किया। इंग्लैंड की दो यात्राओं के दौरान उन्होंने जो व्याख्यान दिए, वे अब 'ज्ञानयोग' के रूप में उपलब्ध हैं। वहाँ स्वामीजी के अनेक शिष्य बन गए, उनमें मार्गरेट नोबुल प्रमुख थीं, जो बाद में दीक्षा लेकर भगिनी निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुईं। 1896 में स्वामीजी ने लन्दन छोड़ा और 15 जनवरी, 1897 को वे भारत लौटे। श्रीलंका के कोलम्बो में उनका भव्य स्वागत हुआ। भारत की आध्यात्मिक शक्ति के पुनर्जागरण और भारत के पुनर्निमाण का लक्ष्य लेकर स्वामीजी ने लगभग एक वर्ष तक कोलम्बो से अलमोड़ा और बाद में दूर उत्तर राजस्थान तक की यात्रा करते हुए आह्वान किया -'दुर्बलताओं और अंधविश्वासों को उखाड़ फैंको और नए भारत का निर्माण करो। भारत के सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन के संगीत का मूल स्वर धर्म है, यही धर्म विश्व को आध्यात्मिक एकात्मकता का उपदेश देगा। उन्होंने सिंहनाद किया-'भारत उठो! अपनी आध्यात्मिकता से सारे संसार को जीत लो।'

भारत में अनेक आक्रांता आए और उन्होंने यहाँ धर्म और अध्यात्म के केन्द्र विशाल मंदिरों-मठों के विध्वंस का कुत्सित प्रयास किया। किन्तु युगों तक इतने आघात सहकर भी हमारी संस्कृति को कोई मिटा नहीं सका। जैसे ही विध्वंस की आँधी गुजरी हमारे देवालय फिर से उसी गौरव के साथ खड़े हो गए। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं -'इस राष्ट्र का प्राण कहाँ है? वह धर्म में है। कोई उसको नष्ट नहीं कर पाया, इसीलिए हिन्दू जाति इतनी आपत्ति- विपत्तियों को सहकर भी आज जीवित है।' हिन्दू धर्म पर गर्व करते हुए वे यह भी कहते हैं-'यदि आज 'हिन्दू' शब्द का कोई बुरा अर्थ लगाया जाता है, तो उसकी परवाह मत करो। आओ! हम सब अपने आचरण से संसार को यह दिखा दें कि संसार की कोई भी

भाषा इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर पायी है।' और साथ ही कतिपय भ्रमित नयी पीढ़ी को पाश्चात्य अन्धानुकरण के प्रति सावचेत करते हुए उनके शब्द चेतावनी भी देते हैं-'हे भारत! यह तुम्हारे लिए सबसे भयंकर खतरा है। पश्चिम के अन्धानुकरण का जादू तुम्हारे ऊपर इतनी बुरी तरह सवार होता जा रहा है कि 'क्या अच्छा है और क्या बुरा' इसका निर्णय अब तर्क-बुद्धि, न्याय, हिताहित, ज्ञान अथवा शास्त्रों के आधार पर नहीं किया जा रहा है। जिन विचारों-आचारों को गोरे साहब पसन्द करें अथवा जिनकी वे प्रशंसा करें, वही बातें अच्छी हैं, जिन बातों की वे निन्दा करें अथवा नापसन्द करें वही बुरी। ओह! इससे बढ़कर मूर्खता का परिचय और कोई क्या देगा?... यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जाएगा।'

वर्तमान समय में हम देखते हैं कि भारत में अधिकांश लोग हिन्दू धर्म को मानने वाले हैं लेकिन उनमें एकता का भाव कहीं शिथिल पड़ गया है। तब भी ऐसी ही स्थितियाँ थीं, जिन पर चिन्तन करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा- 'यदि भारत को महान् बनाना है, इसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है संगठन करने की और बिखरी हुई इच्छाशक्तियों को एकत्र करने की।.......यदि तुम 'आर्य' और 'द्रविड़', 'ब्राह्मण' और 'अब्राह्ममण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर तू-तू मैं-मैं करते रहोगे, झगड़े और पारस्परिक विरोध भाव को बढ़ाओगे, तो समझ लो कि तुम उस शक्ति संग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भविष्य गठित होने वाला है।' इसीलिए आज इस बात की आवश्यकता है कि हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाले सभी जाति-संप्रदाय के भारतवासी एकमत हो जाएँ, संगठित हो जाएँ और समाज में समरसता का भाव स्थापित हो। स्वामीजी के जीवन के अनेक प्रसंगों से भी हमें यही प्रेरणा मिलती है। एक बार राजस्थान के एक रेल्वे स्टेशन पर ठहरे स्वामीजी लगातार तीन दिन तक आध्यात्मिक चर्चा में डूबे रहे। सुनने वाले लोगों का ताँता लगा रहा और स्वामीजी बिना कुछ खाये-पीये प्रवचन देने में तल्लीन रहे। तीसरी रात एक निर्धन ने चिन्ता जताई कि इस तरह तो आपका स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा। स्वामीजी ने उससे पूछा-'क्या तुम मुझे खाना दोगे?' वह निर्धन मोची था इसलिए थोड़ा हिचकिचाते हुए बोला-'मेरे हाथ का खाना आप कैसे खाएँगे। मैं आपके लिए अलग से आटा इत्यादि ले आता हूँ।' तब स्वामीजी ने आत्मीयता से कहा-'नहीं भाई, मैं तो आपके हाथ की बनी हुई रोटियाँ ही खाऊँगा।' और फिर बड़े प्रेम से दोनों ने साथ बैठकर भोजन ग्रहण किया। यह स्वामीजी की केवल उदारता नहीं थी, वरन् उनका भारतवासियों के प्रति अगाध प्रेम था। जाति, वर्ग, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर, अछूत-अस्पृश्यता जैसा कोई भेद उनके मन में कभी नहीं रहा और वे भारत के समस्त हिन्दू समाज से भी सदैव यही अपेक्षा करते रहे। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं-'इस देश में अनेक पंथ या संप्रदाय हुए हैं। आज भी वे काफी संख्या में हैं और भविष्य में भी बड़ी संख्या में होंगे।......संप्रदाय अवश्य रहें, पर सांप्रदायिकता दूर हो जाए। ....ये सब मतभेद और झगड़े एकदम बन्द हो जाने चाहिए।' और वे ये भी कहते हैं- 'हमारे पास एकमात्र मिलन-भूमि है- हमारी पवित्र परम्परा, हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है और उसी पर हमें संगठित होना पड़ेगा।'

देशभर में लगातार प्रवास के कारण कोलकाता में फरवरी 1897 में स्वामीजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। कुछ समय के लिए वे दार्जिलिंग चले गए। स्वामीजी ने देखा था कि पश्चिम के लोग संगठित होकर काम करते हैं, भारत में भी संगठित होकर धर्म-अध्यात्म की प्रेरणा से दीन-दुखियों की सेवा करें, इसी ध्येय को लेकर 01 मई, 1897 को कोलकाता में उन्होंने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। पश्चिमी देशों से आए उनके अनेक शिष्य भी हिन्दू धर्म को ग्रहण कर भारत की सेवा में जुट गए, भगिनी निवेदिता इसमें सबसे आगे रहीं। कोलकाता से पाँच मील दूर गंगा के तट पर बेलूड़ में स्वामीजी की इच्छानुसार एक भूखण्ड पर 'बेलूड़ मठ' भवन का निर्माण हुआ। जनवरी 1899 में स्वामीजी सहित सभी संन्यासी यहाँ पहुँचे। तदुपरान्त स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिए देशभर से निमन्त्रण आये, पश्चिमी देशों की पुनः यात्रा की योजना भी बनी, किन्तु अस्वस्थता के कारण स्वामीजी जा न सके। बेलूड़ मठ में लम्बे प्रवास के बाद वे पूर्व बंगाल और असम के लिए निकले। तब वे माता भुवनेश्वरी देवी को भी तीर्थ यात्रा के लिए साथ ले गए। 1901 के अन्त में जापान में होने वाले धर्म सम्मेलन में भाग लेने का निमन्त्रण आया, लेकिन अस्वस्थता के कारण स्वीकार नहीं कर सके।

04 जुलाई, 1902 आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी, विक्रम संवत् 1957 को स्वामी विवेकानन्द प्रातः 8 बजे से 11 बजे तक गहन ध्यान में बैठे रहे। दोपहर में स्वामी प्रेमानन्द के साथ घूमने निकले और उनको वैदिक विद्यालय खोलने की योजना बतायी, फिर कुछ युवा विद्यार्थियों को संस्कृत पढ़ायी। संध्या समय अपने कक्ष में जाकर एक घण्टा ध्यान किया फिर शान्त भाव से लेट गए और दो दीर्घ श्वास छोड़ते हुए अनन्त में विलीन हो गए। स्वामी विवेकानन्द ने अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया, परन्तु 1896 में एरिक हैमण्ड को लन्दन में कहे गए उनके ये शब्द शोकमग्न प्रत्येक व्यक्ति को स्वामीजी के अमरत्व के प्रति आश्वस्त करते रहे -'हो सकता है मैं अपने फटे हुए वस्त्र की तरह शरीर को उतार फैंकूँ और इस प्रकार मेरा शरीर छोड़ दूँ, परन्तु मेरा काम नहीं रुकेगा।' यह अक्षरशः सत्य भी सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर आज तक हुए राष्ट्र-निर्माण के प्रयत्नों में स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा रही है। भारत के अध्यात्म, धर्म, दर्शन और सांस्कृतिक गौरव को विश्वभर में प्रतिष्ठित करते हुए मानवता के कल्याण और राष्ट्र पुनरुत्थान के प्रति जीवन समर्पित कर देने वाले हमारे प्रेरक स्वामी विवेकानन्द का जीवन और उनके ओजस्वी संदेश आज भी हमें जीवन का सही मार्ग दिखा रहे हैं। ❑

(सदस्य 'राजस्थान साहित्य अकादमी', उपाध्यक्ष, अ.भा.साहित्य परिषद्, चित्तौड़ प्रान्त)

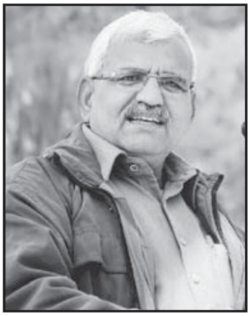

विरोधी स्वभाव में सामंजस्य का उदाहरण शिव परिवार है- एक पुत्र गजमुख है तो एक षण्मुख, खुद के गले में साँप है जो गणेश के वाहन चूहे का शत्रु है, कार्तिकेय का वाहन मोर, साँप का बैरी है। शिव की सवारी बैल है तो भवानी सिंह की सवारी करती हैं दोनों में वैर है। संसार में भी ''तुलसी या संसार में भाँति-भाँति के लोग'' वाली स्थिति है, इनमें सामंजस्य रखने के लिए आवश्यक ज्ञान देने वाला गुरु 'शिव स्वरूप' होना चाहिए। तीसरी, शंकर के सिर पर वक्र चंद्रमा भी शोभा पाता है अर्थात् गुरु के सान्निध्य से पत्थर भी पारस बन जाता है। कुशल कुम्भकार नाचीज मिट्टी से घड़ा बना देता है।

*शिक्षा संस्कारों की स्रोतस्विनी होती है जिसके माध्यम से बालकों की बहुमुखी प्रतिभा परिष्कृत होकर प्रांजल हो जाती है। बालक अपने विद्याध्ययन के साथ-साथ परिवार के सदस्यों के मध्य भी निरंतर प्रशिक्षित होते हैं। अपने से वरिष्ठ परिजनों के सम्मान को केन्द्रित करते हुए इसी भावना पर आधारित श्री हनुमान सिंह राठौड़ द्वारा रचित पुस्तक 'कुटुम्ब प्रबोधन' का 'अभिवादन' शीर्षक से लिखित प्रथम अध्याय गतांक में प्रकाशित किया गया था। इसी क्रम में अध्याय-2 '**गुरु वंदन**' इस अंक में प्रकाशित किया जा रहा है- सम्पादक*

गुरु वंदन

''आज आपकी शाखा पर गुरु पूर्णिमा का उत्सव था। शाखा पर उत्सव में क्या-क्या हुआ?'' माँ ने प्रसंग छेड़ा।

''भगवाध्वज का पूजन हुआ फिर एक भाई साहब ने बौद्धिक दिया।'' भरत ने गणवेश उतारते हुए कहा।

''क्या बौद्धिक दिया?''

''गुरु शब्द में 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ है प्रकाश। जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए वह गुरु है।'' भरत ने बताया।

''भारत भी विश्व गुरु इसीलिए है क्योंकि 'भा' अर्थात् प्रकाश की साधना में 'रत' वह भारत। भारत ने भी विश्व के अज्ञान रूपी अंधकार को मिटाने के लिए ज्ञान का प्रकाश दिया।'' संघ मित्र बोला।

भरत ने टोका - ''ऐसा बौद्धिक में कहाँ बताया था?''

''नहीं बताया तो क्या? माँ ने एक दिन नहीं बताया था क्या? बौद्धिक वाले भाई साहब भूल गए तो मैं क्या करूँ उन्हें बताना चाहिए था, क्यों माँ?'' संघ मित्र ने माँ की ओर समर्थन की नज़रों से देखा।

माँ ने कहा - ''समय की सीमा में सब बातें बताना सम्भव नहीं होता। बौद्धिक में जिन बातों का संकेत हुआ, हम उनके बारे में और जानें यह उद्देश्य होता है। अच्छा आज हम रामचरित मानस में गुरु वंदना पर ही चर्चा करेंगे।''

सब बच्चे बैठ गए। माँ ने रामचरितमानस पुस्तक को पीढ़े पर रखा और सस्वर पढ़ना शुरू किया -

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।।

(बाल काण्ड-3)

इसका अर्थ है ''ज्ञानमय, नित्य, शंकर रूपी गुरु की मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढ़ा चंद्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है।''

इसमें से कुछ बातें हमें समझने की हैं -

- ''प्रथम बात यह कि मनुष्य के लिए गुरु तत्व नित्य है, सनातन है। अपनी गाय के बछड़ा हुआ तो तुमने देखा था?''

''हाँ देखा था। वह उठता फिर गिरता था। गाय ने थोड़ी देर चाटा तो खड़ा हो गया। फिर ग्वाला काका ने थन मुँह में दिया तो दूध पीने लगा और दूध पीते ही उछल कूद करने लगा।'' भरत बोला

''बिल्कुल ठीक। किन्तु तुम्हें याद है जब बुआ के नन्नू हुई थी और हम उसे देखने गए थे।''

''हाँ याद है। कुणाल बुआ से जिद कर रहा था कि इसे मुझे दो, हम बाहर खेलेंगे। पर उसे पता ही नहीं कि वो तो चलना दूर, खड़ी भी नहीं हो सकती।''

''नन्नू और बछड़े में इतना अंतर क्यों है, कभी सोचा है? पशु-पक्षियों को कुछ गुण जन्मजात मिलते हैं और जीवन भर उतने ही रहते हैं अतः उनको गुरु की आवश्यकता नहीं होती किन्तु मनुष्य जन्म के समय अत्यन्त निरीह प्राणी होता है, उसे सब कुछ बाहर से सिखाना पड़ता है, इसलिए उसे लगातार गुरु की आवश्यकता होती है। अतः गुरु को नित्य और बोधमय कहा है।

दूसरी बात, गुरु शंकर रूप है। शिव

कल्याण के देवता हैं, शीघ्र प्रसन्न होने वाले। उनको वे सब स्वीकार हैं जिसका त्याग अन्यों ने कर दिया है- जैसे उन्हें आक, धतूरा चढ़ाते हैं, बाघम्बर लपेटते हैं, राख उनका अंगराग है, हलाहल विष कण्ठ में धारण करते हैं, नटराज रूप, हाथ में अग्नि ज्वाला तो सिर पर शीतल गंगा है, भूतादि गणों से घिरे हैं, नन्दी साथ है।

विरोधी स्वभाव में सामंजस्य का उदाहरण शिव परिवार है- एक पुत्र गजमुख है तो एक षण्मुख, खुद के गले में साँप है जो गणेश के वाहन चूहे का शत्रु है, कार्तिकेय का वाहन मोर, साँप का बैरी है। शिव की सवारी बैल है तो भवानी सिंह की सवारी करती हैं दोनों में वैर है। संसार में भी ''तुलसी या संसार में भाँति-भाँति के लोग'' वाली स्थिति है, इनमें सामंजस्य रखने के लिए आवश्यक ज्ञान देने वाला गुरु 'शिव स्वरूप' होना चाहिए।

तीसरी, शंकर के सिर पर वक्र चंद्रमा भी शोभा पाता है अर्थात् गुरु के सान्निध्य से पत्थर भी पारस बन जाता है। कुशल कुम्भकार नाचीज मिट्टी से घड़ा बना देता है। चौथी बात, तुलसी दास जी कहते हैं-

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर।।
(बा.का. सोरठा-5)

इसका अर्थ है - जो नर रूप में साक्षात हरि हैं, जो कृपा के सागर हैं, उन गुरु के चरण-कमलों का मैं वंदन करता हूँ। उनके वचन महामोह रूपी अंधकार राशि को सूर्य किरणों के समूह के समान विदारण करने वाले हैं।

तुम इतना ही समझो कि अंधकार की सत्ता नहीं होती। अंधकार का अस्तित्व नहीं है।'' माँ ने कहा।

''फिर अंधकार क्यों दिखता है?'' नेहा ने पूछा।

''इसलिए दिखता है क्यों कि प्रकाश नहीं है। दीपक जलाने पर अंधकार कहाँ रहता है?''

''दीपक तले।'' भरत बोला - ''दीपक तले अंधेरे की कहावत नहीं सुनी क्या?''

''सुनी है।'' माँ ने मुस्करा कर कहा, ''इसी से स्पष्ट है कि अंधकार वहाँ है जहाँ प्रकाश नहीं पहुँचा। ऐसे ही अज्ञान के अंधकार को गुरु के ज्ञान रूपी प्रकाश पुंज से दूर किया जा सकता है। एक कथा सुनाती हूँ -

एक प्रसिद्ध शिल्पी था। उसने अपना पूरा जीवन लगाकर एक भव्य मूर्ति शिल्प तैयार किया। मूर्तिकार वृद्ध हो गया था। उस मूर्ति के अनावरण कार्यक्रम में शिल्पी को पालकी में बैठाकर लाया गया। देखने वालों ने दाँतों तले अंगुली दबा ली। सर्वत्र उस अनुपम कला कृति की प्रशंसा हो रही थी। अंत में अनावरणकर्ता ने उनसे प्रश्न पूछा- ''आपने यह इतनी सुन्दर मूर्ति कैसे बनायी?'' शिल्पी ने अत्यन्त विनम्रता से कहा- ''मैंने मूर्ति नहीं बनायी। प्रत्येक मूर्ति तो भगवान ने ही बनायी है। मुझे श्रेय देना हो तो इतना ही कि मैंने अपने छैनी-हथौड़े से इस शिला के उन अतिरिक्त पत्थरों को हटा दिया जिनका मूर्ति पर आवरण था। और आवरण हटते ही मूर्ति शिल्प निखर गया। गुरु भी शिल्पकार की तरह है जो शिष्य के अज्ञान रूपी आवरण को ज्ञान के प्रकाश पुंज से विदीर्ण कर देता है जिससे उसकी अन्तर्निहित पूर्णता प्रकट हो जाती है।''

''माँ, यदि गुरु शिल्पी की तरह आवरण हटाकर मूर्ति निखार सकता है तो गुरु के पास जाने वाले सब लोग अच्छे क्यों नहीं बनते। आपने ही तो अंगुलिमार की कथा सुनायी थी। आश्रम में अध्ययन के बाद भी वह भयंकर डाकू क्यों बन गया?'' नेहा ने पूछा

''देखो, अपनी बीमारी ठीक करनी है तो चिकित्सक को सब प्रश्नों के ठीक उत्तर देने होंगे, कुछ छिपाया तो निदान पूर्ण नहीं होगा और औषध उपचार अपूर्ण रहेगा। मिट्टी से घड़ा बनता है यह सत्य है पर बालू मिट्टी से घड़ा नहीं बनता यह भी उतना ही सही है। दूध से मक्खन निकलता है पर एक चम्मच दूध से नवनीत नहीं निकल सकता। यदि शिला परीक्षण में उसकी अन्तर्निहित दरारें छिपी रहीं, ध्यान नहीं आयी तो मूर्ति नहीं बनेगी। अत: गुरु के समक्ष जो शिष्य अपने को खुली किताब की तरह रख देता है उसका कल्याण हो जाता है तब बालू की सिलिका भी बहुमूल्य बन जाती है। जो गुरु से कुछ छिपाता है उसके हृदय में विद्या रूपी विमल विवेक नहीं हो सकता। तुलसी दास जी कहते हैं -

संत कहहिं अस नीति
प्रभु श्रुतिपुरान मुनिगाव।
होइ न बिमल बिबेक
उर गुर सन किएँ दुराव।।

(बा.का.-45)

''गुरु के प्रति श्रद्धा होना आवश्यक है।''

''किन्तु हम शाखा में कहते हैं कि व्यक्ति की अपेक्षा तत्त्व को गुरु बनाना चाहिए। क्योंकि व्यक्ति में गुण-दोष दोनों ही रहते हैं। मैंने भी मानस पारायण करते समय पढ़ा है- 'जड़ चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार' जब व्यक्ति कभी भी स्खलित हो सकता है तब उसके प्रति सार्वकालिक श्रद्धा कैसे रख सकते हैं।'' पिताजी ने चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए कहा, जो अभी तक दूर बैठे अखबार पढ़ रहे थे।

''जहाँ विकल्प होते हैं वहाँ अंध श्रद्धा की सम्भावना नहीं होती क्योंकि विकल्पों में से सर्वोत्तम का चयन हो सकता है। तत्त्व कभी न बदलने वाला सनातन गुरु है पर आप स्वयंसेवक लोग डॉक्टर जी, गुरुजी के जीवन को अनुकरणीय क्यों मानते हैं?'' माँ ने पिताजी की ओर मुड़ते हुए पूछा।

''इसलिए कि उनका जीवन आदर्श था।''

''मैं भी यही कह रही हूँ। जन सामान्य के लिए तत्त्व के अनुरूप आदर्श जीवन जीने वाला प्रेरक उदाहरण चाहिए, जिसे

देखकर वह अनुकरण कर सके तथा जिसके सान्निध्य में बैठकर करणीय का बोध व अकरणीय का संकेत प्राप्त कर सके। अत: गुरु के चयन में सावधानी तथा समर्पण के बाद श्रद्धा रखनी ही चाहिए। यदि श्रद्धा भंग होने का भय हो तो वहाँ से निर्लिप्त हो जाना चाहिए, विद्रोही नहीं बनना चाहिए। गुरु गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ का प्रसंग स्मरण है न!!

गोरख जोग जगाया जगत में
आदिनाथ पंथ लाया।
इक दिन गुरु से बोला चेला
जाग मच्छन्दर गोरख आया।।

तुलसीदास जी ने इसी ओर संकेत करते हुए कहा है कि जिसे गुरु के वचनों पर विश्वास नहीं उसे स्वप्न में भी सुख और ध्येय-सिद्धि नहीं हो सकती -

''गुरु कें वचन प्रतीति न जेही।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।''
(बा. 80/8)

तुलसीदास जी ने तो यहाँ तक कहा है कि ब्रह्मा के कोप से गुरु बचाता है पर गुरु से विरोध होने पर रक्षा करने वाला कोई नहीं -

''राखइ गुर जौं कोप बिधाता।
गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।''
(बा. 116/6)

''लेकिन यह कैसे सम्भव है माँ? हमारे गुरुजी हमें दिन में दस बार डाँटते हैं।'' भरत ने भोलेपन से पूछा।

''अध्यापक और गुरु में अंतर होता है, बेटा! फिर भी तुमने ध्यान दिया कि यदि गुरुजी किसी छात्र की ओर ध्यान देना बंद कर दें तो वह उस विषय में पिछड़ जाएगा। एक सामान्य अध्यापक जब छात्र का भविष्य बना और बिगाड़ सकता है, तो अलौकिक गुरु के विरोध का क्या परिणाम होगा?'' थोड़ी देर रुककर माँ फिर बोली-

''छात्रों को शारीरिक दण्ड देने पर प्रतिबंध के समाचार अखबारों में पढ़ती हूँ यह उचित है। पर अखबारों में अध्यापक की छवि राक्षस की बना दी गई है कि वह मासूम बच्चों को ताड़ना देने में आनन्द का अनुभव करता है। इसके कारण उसने विधि-निषेध के निर्देश देना बंद कर दिया तो परिणाम कुछ वर्षों बाद ध्यान में आएँगे। सेकुलरता के नाम पर पहले ही संस्कार विहीन पाठ्यक्रम विद्यालयों में हैं, अब शिक्षक भी छात्रों को गलती पर टोकने से कतरायेंगे तो परिणामस्वरूप संस्कारविहीन, उच्छृंखल पीढ़ी हमें प्राप्त होगी। जिसकी श्रम के प्रति अनास्था होगी और अनुदान पर पलने वाली बनेगी। सरकार उसकी बनेगी जो नि:शुल्क अधिक सुविधाओं की घोषणा करेंगे।'' तुलसीदास जी ने उत्तर काण्ड में इसी ओर संकेत करते हुए जेसे भविष्यवाणी की है-

गुर सिष बधिर अंध का लेखा।
एक न सुनई एक नहिं देखा।।
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुर घोर नरक महुँ परई।।
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं।
उदर भरे सोइ धर्म सिखावहिं।।

''माँ इसका अर्थ बताइये न!'' नेहा ने पूछा।

माँ ने कहा - ''तुलसीदास जी ने आज की स्थिति का वर्णन भविष्य दृष्टा की तरह किया है। अपने विरुद्ध कानूनी कार्यवाही से भयभीत अध्यापक अंधे की तरह व्यवहार कर रहा है अर्थात् वह शिष्य के अशिष्ट आचरण को देखते हुए भी अनदेखा करता है, वह न उसे अच्छे कार्य के लिए प्रोत्साहन देता है और न अनुचित कार्य के लिए उचित समय पर उचित भाषा में संकेत करता है। उसका स्वयं का आदर्श जब अंधता धारण करना हो गया तो शिष्य बहरा हो गया। वह उसके थोथे उपदेशों को सुनता नहीं ''आप गुरुजी बैंगन खावे, चेला ने प्रबोध सुनावे'' यह कैसे चलेगा?

अब गुरु छात्रों के अज्ञान रूपी शोक का हरण नहीं करता ट्यूशन, कोचिंग और निजी विद्यालयों में ऊँची फीस के नाम पर उसके धन का हरण करता है। ये जो तथाकथित शिक्षा को खरीद कर प्राप्त कर रहे हैं, देश को स्वर्ग बनाएँगे या उसका जोंक की तरह खून चूसकर नरक बनाएँगे? इस प्रकार अपने कर्त्तव्य को भूला हुआ गुरु घोर नरक में ही पड़ेगा, ऐसा तुलसीदास जी कहते हैं।

माता-पिता कैसे हो गए हैं? वे अपनी अतृप्त इच्छाओं को बच्चों के माध्यम से पूरी करना चाहते हैं, अत: वे उसे वो बनाना चाहते हैं जो उसके माँ-बाप नहीं बन पाये थे या वकील, डॉक्टर बन गए तो उस पुश्तैनी धंधे को चलाने वाले वारिस उनको चाहिए। अधिसंख्य अभिभावक 'पैकेज' की होड़ में हैं। वे अपने बच्चों को वह बनाना चाहते हैं जिसमें मोटा पैकेज मिलता है, भले उस पैकेज में माँ-बाप की जगह न हो। यही दिखायी देता है। अपने पड़ौस के वृद्ध शर्मा जी शर्म के मारे बाहर नहीं निकलते क्योंकि मोटे पैकेज पर अमरीका गया बेटा गोरी मेम के साथ वहीं पैक हो गया। अभी अखबार में पढ़ा, विदेश गए बेटे ने अकेली माँ से तीन साल मिलना तो दूर दूरभाष पर बात भी नहीं की और जब मिलने आया तो माँ का कंकाल मिला। तुलसी दास जी कहते हैं -

''माता-पिता बालकों को बुलाकर जिससे पेट भरे, वही धर्म सिखलाते हैं।'' आजकल, तुलसी बाबा के अनुसार, कड़वे तूम्बे हो रहे हैं, इसीलिए परिणाम भी विष ही है। भारत का सनातन गुरु तत्व समझना न केवल हमारे लिए किन्तु विश्व के लिए भी आवश्यक है, उपकारक है और इसके लिए सर्वप्रथम श्रद्धा चाहिए।

ते सिर कटु तुंबरि सम तूला।
जे न नमत हरि गुर पद मूला।।
(बा. 113/4)

''जो सिर भगवान व गुरु के चरणों में नहीं झुकते वे कडुवे तूम्बे के समान हैं।''

विश्व गुरु भारत के चरणों में नमन के साथ आज का अपना स्वाध्याय सूत्र समाप्त करते हैं। ❑ *क्रमश: ...*

सामर्थ्यवान भारत हो शिक्षा का लक्ष्य

(शिक्षा प्रशासन व शिक्षक संगठन दो विपरीत दिशाएँ है। दोनों क्षेत्रों में शीर्ष पर पहुँचने का सौभाग्य जिन विरले लोगों को मिल पाता है उनमें से एक हैं अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष श्री जगदीश प्रसाद सिंघल। उच्च शिक्षा में 35 वर्ष का वाणिज्य शिक्षण का अनुभव रखने वाले श्री सिंघल राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी रहे हैं। अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के सचिव से प्रारम्भ कर अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष तक की यात्रा करने वाले श्री सिंघल शैक्षिक व संगठनात्मक कार्यों का लम्बा अनुभव रखते हैं। वाणिज्य विषय पर माध्यमिक व उच्च शिक्षा की 17 पुस्तकों के लेखक व सहलेखक रहे श्री सिंघल को विभिन्न संगठन वार्ताकार के रूप में आमन्त्रित करते रहे हैं। भारत के राष्ट्रपति द्वारा पण्डित मदनमोहन मालवीय राष्ट्रीय पदक से सम्मानित श्री सिंघल सामाजिक संगठनों में भी सक्रिय रहे हैं। श्री सिहंल से शिक्षा के प्रासंगिक प्रश्नों पर चर्चा की है शैक्षिक मंथन के सह संपादक विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी ने। प्रस्तुत हैं वार्ता के संपादित अंश - संपादक)

जगदीश प्रसाद सिंघल

साक्षात्कार

1. देश के सबसे बड़े शिक्षक संगठन अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के उपाध्यक्ष व महामंत्री का दायित्व आपने कई वर्षो तक निभाया है। अब आपको संगठन के अध्यक्ष का दायित्व दिया गया है इस परिवर्तन को आप कैसा अनुभव करते हैं?

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और शाश्वत सत्य भी। मेरा जो दायित्व परिवर्तन हुआ है उसे मैं सकारात्मक एवं रचनात्मक रूप में लेता हूँ। महासंघ के विभिन्न दायित्त्वों में रहते हुए जो कुछ भी मैंने सीखा है और अनुभव किया है उसे अब और परिष्कृत करते हुए जीवन में उतारने की प्रतिबद्धता रहेगी। मैं इसे एक अवसर के रूप में देखता हूँ और मेरी इच्छा है कि पूर्ण निष्ठा एवं लगन से महासंघ को सुदृढ़ करने एवं सामर्थ्यवान बनाने में इसका पूरा उपयोग कर सकूँ।

2. देश स्वतंत्र होने के साथ ही शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के प्रयास प्रारम्भ हो गए थे मगर धरातल पर कोई बदलाव दिखाई नहीं देते। मैकाले आज अधिक मजबूत दिखाई देता है। क्या कारण रहे हैं?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा क्षेत्र में आये परिवर्तनों को मैं अलग ढँग से देखता हूँ। सकल नामांकन अनुपात में वृद्धि हुई है। संस्थाओं की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है, शिक्षा की पहुँच किसी विशेष वर्ग तक सीमित न होकर समावेशी बनने लगी है, परन्तु साथ ही इसकी गुणवत्ता में गिरावट आई है, अनुशासनहीनता बढ़ी है, भौतिकता से दु:ख बढ़ा है और व्यापारीकरण में वृद्धि हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में उत्पन्न दोषों के लिए केवल मैकाले को जिम्मेदार ठहराना सबसे बड़ी भूल है। इस सबके लिए तो हम सभी, हमारी सरकारें व्यवस्था एवं हमारी मानसिकता भी जिम्मेदार है। हम अभी भी हीनता एवं दासता भावना के शिकार हैं, हमारी शिक्षा पद्धति अभी भी पश्चिम परक है, हम मूल से कट गये हैं, हमारी सृजन क्षमता में कमी आई है श्रद्धा घटी है और ज्ञान एवं विज्ञान को अध्यात्म से अलग कर दिया है।

3. देश में नई शिक्षा नीति बनाई जा रही है। आपके संगठन की भूमिका क्या रही है? क्या प्रमुख सुझाव दिए?

नवीन शिक्षा नीति के संबंध में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के संबंध में संगठनों द्वारा अनेक गोष्ठियाँ, कार्यशाला एवं विमर्श आयोजित कर शिक्षा की गुणवत्ता, विषयसामग्री, वित्तीयन व्यवस्था, अभिशासन, सर्व सुलभता एवं समावेशीयन, व्यापारीकरण आदि के सम्बन्ध में अनेक सुझाव समिति एवं शासन के समक्ष प्रस्तुत किये। इन सभी सुझावों के सम्बन्ध में यहाँ बात करना तो सम्भव नहीं है फिर भी कुछ बातें अवश्य कहना चाहूँगा। आज खण्ड-खण्ड में बाँटने वाली शिक्षा नीति के स्थान पर समग्र शिक्षा नीति की आवश्यकता है जो भार केन्द्रित, छात्र केन्द्रित, ज्ञान-विज्ञानयुक्त सर्वसमावेशी, मूल्यपरक हो और जिसमें विज्ञान एवं अध्यात्म का समन्वय हो। तीन वर्ष से अधिक उम्र के सभी बालकों को सरकार द्वारा औपचारिक शिक्षा में सम्मिलित करना, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने, श्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित करने, श्रेष्ठता का उच्च मानदण्ड स्थापित करने के लिए शिक्षण संस्थाओं को खुले वातावरण में कार्य करने की आजादी प्रदान करनी होगी। शिक्षा का प्रशासन पूर्ण रूपेण नौकरशाही

से मुक्त और योग्य एवं निष्ठावान शिक्षकों के हाथों में हो। सरकार सकल घरेलू उत्पाद का 10 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करे। प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही हो जाये, शिक्षा का समाज एवं उद्योग से जुड़ाव हो, शिक्षण संस्थाओं का प्रत्यायन अनिवार्य हो, शिक्षा का व्यवसायीकरण न हो इसकी पुख्ता व्यवस्था हो, सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था के नियमन के लिए शिक्षकों से युक्त पारदर्शी, स्वतन्त्र, निष्पक्ष एवं स्वायत्त व्यवस्था हो। शोध एवं नवाचार को प्रोत्साहन देना, विषय सामग्री विद्यार्थी की अर्न्तनिहित क्षमताओं का विकास करने वाली हो, कौशल विकास पाठ्यक्रमों में समावेशित हो शिक्षकों एवं आचार्यों के सतत् प्रशिक्षण की गुणात्मक व्यवस्था हो तथा शिक्षा नीति का समयबद्ध समृद्ध क्रियान्वयन हो।

4. एक ओर देश में विश्व स्तरीय शिक्षा संस्थान बनाने के प्रयास हो रहे हैं दूसरी और देश के सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश शिक्षा में करने की बात हो रही है। दोनों को एक साथ साधने के प्रयास कैसे संभव होंगे?

विश्व स्तरीय शिक्षा संस्थान बनाने के प्रयास स्वागत योग्य है। सांस्कृतिक मूल्यों का समावेश शिक्षा में करना किसी भी प्रकार से विश्वस्तरीय संस्थान बनाने में न तो बाधा है और न ही असंगत। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। विमुक्ति, शील, साधना, सृजनता, शोध एवं नवाचार, मानव निर्माण, श्रद्धा तथा अनुशासन ही शिक्षा की आत्मा है और ये ही हैं हमारे सांस्कृतिक मूल्य। इन्हीं मूल्यों से अनुप्राणित संस्था ही विश्वस्तरीय शिक्षा संस्थान का दर्जा प्राप्त कर सकती है।

5. मानव संसाधन विकास मंत्री जी ने स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम को कम करने की घोषणा की है। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ की क्या प्रतिक्रिया है।

विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम को कम करना या अधिक करना एक मनोवैज्ञानिक विषय है और शिक्षा से प्राणप्रण से जुड़े हुए शिक्षकों से संबंधित है। शिक्षा का पाठ्यक्रम क्या हो, कितना हो, कैसा हो यह शिक्षकों का विषय है। मेरी राय में स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला, भावी चुनौतियों के समाधान करने के लिए सृजन करने की क्षमता विकसित करने तथा व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करने वाला होना चाहिए।

6. अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने सरकार से अपेक्षा की है कि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मर्यादा सुनिश्चित की जाए, क्या यह माँग स्वतन्त्रता के विपरीत नहीं है?

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मर्यादा सुनिश्चित करने की माँग करना पूरी तरह से न्यायोचित है और यह किसी भी रूप में स्वतन्त्रता के विपरीत नहीं है। हमारे देश के संविधान के अनुच्छेद 19 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार बिना किसी भ्रम एवं बाधा के अभिव्यक्त करने का अधिकार है। परन्तु संविधान में यह भी स्पष्ट किया गया है कि अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता निरपेक्ष नहीं है, इसकी कुछ सीमाएँ एवं मर्यादाएँ हैं जिसके अन्तर्गत उसे दूसरे व्यक्ति के अधिकार, प्रतिष्ठा को जान बूझकर नुकसान पहुँचाने का अधिकार नहीं है। भारत की संप्रभुता, सुरक्षा, शान्ति एवं सुरक्षा नैतिकता के विरुद्ध कार्य करने की भी स्वतंत्रता नहीं है।

7. संगठन शिक्षा व शिक्षकों की समस्याओं के निराकरण की माँग भी करता रहा है। कितनी सफलता प्राप्त हुई है? कौन सी प्रमुख समस्याओं का निराकरण शेष है?

महासंघ शिक्षा एवं शिक्षकों की समस्याओं के निराकरण के संबंध में अत्यन्त गम्भीर प्रयास करता रहा है और यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। केन्द्र एवं राज्य सरकारों के समक्ष महासंघ इन समस्याओं को समय-समय पर प्रस्तुत करता रहा है और अनेक समस्याओं का समाधान भी विगत वर्षों में हुआ है। सातवें वेतनमानों की घोषणाओं में महासंघ की कई बातों को स्वीकार करने, शिक्षकों की नियुक्ति की प्रक्रिया को गतिशील बनाने, महाविद्यालय के प्राचार्य के कार्यकाल में वृद्धि करने, सम्पूर्ण देश में शिक्षकों का नामकरण एक समान करने, ए.पी. आई. व्यवस्था को व्यावहारिक बनाने, इससे अधिक उसके बच्चों को सरकारी विद्यालयों में प्रवेश देने, आर.टी.ई. एक्ट में संशोधन करने जैसे विषयों पर सहभागिता बनी है। परन्तु अभी भी अनेक समस्याएँ जैसे सेवानिवृत्ति आयु 65 वर्ष करने, 1 जनवरी 2004 से पूर्व की पैंशन योजना को पुन: लागू करने, शिक्षकों की नियमित नियुक्ति करने, अनुदानित शिक्षकों के ट्रैजरी भुगतान की सुविधा देने, शिक्षकों से केवल शैक्षणिक कार्य कराने, सकल घरेलू आय का 10 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने, स्वतन्त्र नियामक आयोजन बनाने प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में देने जैसी अनेक समस्याएँ अनिवार्य हैं।

8. अखिल भारतीय स्तर पर कितने शिक्षक संगठन कार्य कर रहे हैं? आपका संगठन इनसे किस प्रकार भिन्न है?

अखिल भारतीय स्तर पर अनेक शिक्षक संगठन कार्य कर रहे हैं। शैक्षिक महासंघ अन्य शिक्षक संगठनों से भिन्न है क्योंकि हम शिक्षक समस्याओं के साथ-साथ शिक्षा की समस्याओं को भारतीय दृष्टिकोण से देखने तथा शिक्षक एवं समाज के मध्य दूरी को पाटने का कार्य करते हैं जबकि अन्य संगठनों का शिक्षा एवं समाज से कोई लेना देना नहीं है। महासंघ

सांस्कृतिक राष्ट्रभाव की बुनियादी जीवन दृष्टि को लेकर कार्य करने वाला पूर्ण प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के शिक्षकों का एक मात्र संगठन है जो शिक्षा पर समग्र रूप से विचार करता है। भारत को पुन: विश्व गुरु बनाने तक की यात्रा में शिक्षार्थी, शिक्षा एवं समाज के प्रति हमारा जो दायित्व है उसे पूरा करने के संकल्प के साथ महासंघ कार्य कर रहा है।

9. आपको उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक व प्रशासक के रूप में कार्य करने का अच्छा अनुभव रहा है। देश में उच्च शिक्षा का पूरा विस्तार अभी नहीं हो पाया है। उच्च शिक्षा पर आरोप है कि वह पढ़े लिखे बेरोजगार तैयार कर रही है। एक ओर धन की कमी बताई जाती है दूसरी ओर कहा जाता है कि स्वतन्त्रता के बाद का 85 प्रतिशत बजट व्यर्थ कर दिया है। संगठन इस स्थिति को कैसे देखता है?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् और विशेष रूप से पिछले कुछ वर्षों में हुए उच्च शिक्षा के विस्तार को मैं सकारात्मक रूप में लेता हूँ। 800 से अधिक विश्वविद्यालय, 42 हजार से अधिक महाविद्यालय 100 से अधिक विशिष्ट संस्थानों एवं अनेक योजनाओं का अस्तित्व मैं आना एक सुखद अनुभव है। परन्तु हमारी नीतियों एवं प्राथमिकताओं की स्पष्टता के अभाव के कारण हम अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं कर पाये हैं। आज हमारे समक्ष एक ओर जहाँ शिक्षा की गुणवत्ता की चुनौती है वहीं पर शिक्षा को भौतिकवाद के कहर से नहीं बचा पा रहे हैं। 'सबको शिक्षा' और 'अच्छी शिक्षा' के मंत्र को शिक्षा के साथ आत्मसात करने में हम सफल नहीं हुए हैं। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की पुन: संरचना करने का अब समय आ गया है। हमें लीक से हटकर कुछ निर्णय लेने होंगे और अपने देश की शिक्षा की धारा को भारतीय चिन्तन धारा से जोड़ना होगा तथा ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनानी होगी जिससे प्राप्त ज्ञान को व्यवहार/कर्म में परिवर्तन किया जा सके और वह युगानुकूल हो।

10. मोदी सरकार ने उच्च शिक्षा को स्तरीय बनाने की कई घोषणाएँ समय-समय पर की है। आपका संगठन इनका कैसे मूल्यांकन करता है?

वर्तमान सरकार ने शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के गम्भीर प्रयास प्रारम्भ किये हैं। समय-समय पर की गई घोषणाएँ तथा उन्हें क्रियान्विति के प्रयास प्रशंसनीय हैं। परन्तु जब तक इन योजनाओं को धरातल पर सफलतापूर्वक क्रियान्वित न किया जाये तब तक अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पाते। वर्तमान सरकार इन योजनाओं के सम्बन्ध में अत्यन्त सक्रिय है और संवेदनशील भी। इन योजनाओं के सफल एवं प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समाज एवं शिक्षकों की सक्रिय सहभागिता के महत्त्व को स्वीकार करने की आवश्यकता मैं महसूस करता हूँ।

11. उच्च शिक्षा को लेकर विश्व स्तर पर उहा-पोह की स्थिति बनती दिख रही है। परम्परागत डिग्री पाठ्यचर्या के स्थान पर नैनो-डिग्री की बात की जाने लगी है। भारतीय माहौल में आप इसे कैसे देखते हैं?

विश्व स्तर पर उहा-पोह की स्थिति इसलिए है कि उन्होंने शिक्षा को एक विक्रय करने योग्य वस्तु बना दिया है। वहाँ शिक्षा का आधार भौतिकवाद है। मैं नहीं समझता कि हमारे देश में यह स्थिति है क्योंकि ज्ञानधारा हमारी मुक्त जीवन दृष्टि पर आधारित है और उसका स्वरूप राष्ट्रीय है। हमें चाहिए कि हम हमारे देश में औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षा को भी महत्त्व देना प्रारम्भ करें। शिक्षा के श्रेष्ठ मानदण्ड स्थापित करें एवं उसकी आत्मा को भारतीय बनाएँ।

12. अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के विस्तार की वर्तमान स्थिति क्या है? भावी लक्ष्य क्या है?

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ वर्तमान में 24 राज्यों एवं 100 से अधिक विश्वविद्यालयों में सक्रिय रूप से कार्यरत है। हमारा संकल्प है कि देश के सभी राज्यों में एवं 200 से अधिक विश्वविद्यालयों में हमारी पहुँच हो और राष्ट्र के पुन: निर्माण में महत्ती भूमिका निर्वाह कर सकें।

13. क्या वर्तमान भारतीय समाज में शिक्षक के सम्मान का संरक्षण कठिन नहीं होता जा रहा?

शिक्षक सम्मान माँग करने का विषय नहीं है यह समाज के सभी वर्गों द्वारा स्व:प्रेरणा से हो। समाज में जब विकृति आती है तो शिक्षक भी उससे अछूता नहीं रह पाता। यह ठीक है कि समाज में श्रद्धा एवं विश्वास का भाव कम हुआ है। इसके लिए शिक्षक को भी आत्मनिरीक्षण करने की आवश्यकता है। शिक्षक यदि विषय के शिक्षक से ऊपर उठकर समाज का शिक्षक बनेगा, समाज को सही दृष्टि देगा तो शिक्षक समाज के सम्मान का स्वाभाविक हकदार होगा।

14. सारभूत प्रश्न, आप देश के शिक्षा मंत्री बन जावे तो सबसे पहला परिवर्तन क्या करना चाहेंगे?

यद्यपि यह प्रश्न पूर्ण रूप से काल्पनिक है। परन्तु यह प्रश्न क्योंकि आपने पूछा है तो यह जोखिम उठाते हुए भी मैं यह कहना चाहूँगा कि शिक्षा की आत्मा भारतीय हो और सुदृढ़ एवं सामर्थ्यवान भारत का निर्माण कर इसके लिए शिक्षा के सम्पूर्ण ढाँचे को परिवर्तित कर उसे पारदर्शी, सर्वस्पर्शी, स्वायत्त एवं युगानुकूल बनाना होगा। ❑

रुक्टा (रा.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर जयन्ती पर प्रदेश भर में संगोष्ठियों का आयोजन

राजस्थान विश्वविद्यालय और महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की प्रदेशभर की इकाइयों द्वारा डॉ. अम्बेडकर जयन्ती पर संगोष्ठियों का आयोजन कर श्रद्धा सुमन अर्पित किए गए।

सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर की स्थानीय इकाई द्वारा ज्योतिबा फूले और डॉ. भीमराव अंबेडकर जयंती पर 'सामाजिक समरसता' विषय पर एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस विषय पर बोलते हुए मुख्य अतिथि डॉ. चेतन प्रकाश, कार्यवाहक प्राचार्य, राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर ने डॉ. अम्बेडकर और ज्योतिबा फूले को श्रद्धांजलि देते हुए कहा कि 'दोनों ही महापुरुष तमाम अभावों व अवरोधों के बावजूद राष्ट्र के लिए, समाज के लिए व शिक्षा के लिए आजीवन समर्पित रहे। ज्योतिबा सर्वसमाज को, खास कर महिला शिक्षा के लिए आजीवन प्रतिबद्ध रहे। डॉ. अम्बेडकर अंतिम वंचित तक शिक्षा और समानता के अधिकार पहुँचने की बात करते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि अच्छे लोकतंत्र के लिए अच्छे समाज का निर्माण जरूरी है।'

रुक्टा (रा.) के महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने कहा कि समाज सदैव बुद्धिजीवियों से मार्गदर्शन प्राप्त करता रहा है, किन्तु दुर्भाग्य से आज के बुद्धिजीवी कम्फर्ट जोन में आ गए हैं और निहित स्वार्थ वाले राजनेताओं की फूट डालो राज करो की नीति आज भी समाज को विखण्डित कर अपने स्वार्थपूर्ति की रहती है। भड़काना सरल होता है। जैसा हाल ही में हुआ, ऐसे आंदोलन का स्रोत कहीं न कहीं समाज को विखण्डित कर अपना वर्चस्व बनाने की सोच में है। ऐसे नेता समाज मे विखण्डन करने वाले विचारों को वायरल कराते हैं। रचनात्मक और सकारात्मक पहल करने और राष्ट्रीय सोच के साथ परिवर्तन के लिए काम करना बड़ा 'स्लो प्रोसेस' हो सकता है, किन्तु जब तक हम अपनी अस्मिता को नहीं पहचानेंगे, तब तक हम छोटे-छोटे समूहों में बँट कर अपनी वृहत राष्ट्रीय पहचान खो देंगे और अगर हम बँटे तो परिणाम 'डिवीजन ऑफ सोसाइटी' होगा। ऐसे में बुद्धिजीवी अपना कर्तव्य समझे और सामाजिक समरसता के लिए मन वचन कर्म से आगे आएँ।

डॉ. सुशील बिस्सू ने सोशल मीडिया के भ्रामक दुष्प्रचार के प्रति सावधान किया। समाज की समरसता हेतु डॉ. अम्बेडकर और ज्योतिबा फूले के योगदान का स्मरण करते हुए कहा कि इन दोनों महापुरुषों को किसी जाति विशेष के नेता के रूप में सीमित करना गलत है। ऐसे महापुरुष जाति विशेष के न होकर समूचे राष्ट्र के होते हैं। डॉ. विमल महावर ने अपने व्याख्यान में बताया कि बाबा साहेब जब राष्ट्रीय परिदृश्य में उभरे, तब साम्यवाद भारत में भी पैर पसार रहा था। साम्यवाद का रास्ता वर्ग संघर्ष का होता है और रक्त क्रांति में विश्वास रखता है। यह डॉ. अम्बेडकर का सबल और दूरदर्शी नेतृत्व था कि उन्होंने वंचित वर्ग का लोकतंत्र में विश्वास जमाया और साम्यवाद के वर्ग संघर्ष से भारत को बचाने में अपना अमूल्य योगदान दिया। डॉ. मनोज बहरवाल ने कहा कि डॉ. अम्बेडकर समरस समाज के निर्माण का दर्शन ले कर चले, उनके जीवन का वृहत्तर लक्ष्य 'राष्ट्र उत्थान' का था, अत: उन्हें सिर्फ दलित चिंतक के रूप में सीमित करना उनके साथ न्याय नहीं है।

डॉ. मिलन यादव ने 'पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन' के माध्यम से डॉ. अंबेडकर की अकादमिक व राजनीतिक उपलब्धियों को प्रस्तुत किया। बाबा साहेब ने अनेक विषयों में मास्टर्स डिग्री तथा विश्व प्रसिद्ध कोलंबिया विश्वविद्यालय तथा लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, दोनों से डॉक्टरेट की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त की।

संगोष्ठी की अध्यक्षता डॉ हासो दादलानी ने, धन्यवाद ज्ञापन इकाई सचिव डॉ. लीलाधर सोनी ने तथा संचालन डॉ. अनूप आत्रेय ने किया। अम्बेडकर जयंती के अवसर पर रुक्टा-राष्ट्रीय के अजमेर विभाग के कार्यकर्ताओं ने अम्बेडकर सर्किल पर बाबा साहेब की मूर्ति पर माल्यार्पण कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा में रुक्टा राष्ट्रीय की राजकीय महाविद्यालय एवं कला महाविद्यालय की इकाइयों के संयुक्त तत्वावधान में बाबा साहब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर की जयंती के उपलक्ष्य में समरसता दिवस मनाया गया, जिसमें मुख्य अतिथि कोटा विश्वविद्यालय के हेरिटेज विभाग के विभागाध्यक्ष एवं प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ. मोहन लाल साहू रहे एवं अध्यक्षता प्राचार्य कामिनी जोशी ने की। विशिष्ट अतिथि कोटा संभाग के सहायक निदेशक दिनेश तिवारी रहे।

मुख्य वक्ता डॉ. साहू ने वर्तमान संकीर्ण और स्वार्थपूर्ण होती जा रही जाति व्यवस्था को विषमता की मूल जड़ बताते हुए कहा कि हमें सामाजिक समरसता के लिए मन, वचन और कर्म से कार्य करना होगा। डॉ. तिवारी ने कहा कि आपसी फूट के कारण देश और समाज को अतीत में अनेक बार बुरे दौर से गुजरना पड़ा है, अत: हमें अतीत से सबक लेकर समाज में सौहार्द बनाने की अधिकतम कोशिश करनी चाहिए। प्राचार्य डॉ. कामिनी जोशी ने कहा कि भाई चारा तोड़ने वाले की कोई जाति नहीं होती। हमें सब को जोड़ने का कार्य करना चाहिए।

इस अवसर पर रुक्टा (रा.) के कोटा विभाग अध्यक्ष डॉ. विजय पंचोली, प्रांतीय कार्यकारिणी सदस्य डॉ. गीताराम शर्मा, विभाग सह सचिव डॉ. नवीन मित्तल, डॉ. राजेश शर्मा, डॉ. अनीता वर्मा, डॉ. साधना कंसल, डॉ. शिव कुमार मिश्र, डॉ. रामावतार मेघवाल, डॉ. मनोज वर्मा ने भी बाबा साहब के पुरुषार्थ और अवदान पर विचार व्यक्त किये। संचालन राज. महाविद्यालय, कोटा के इकाई सचिव डॉ. आदित्य गुप्ता ने तथा आभार प्रदर्शन कला महाविद्यालय, कोटा के इकाई सचिव एम.जेड.ए.खान ने व्यक्त किया।

राजकीय महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में अम्बेडकर जयंती पर आयोजित संगोष्ठी में प्राचार्य डॉ. राम सिंह ने डॉ. आंबेडकर के जीवन दर्शन एवं राष्ट्र निर्माण में उनकी महती भूमिका पर प्रकाश डालते हुए कहा कि बाबासाहेब ने बचपन में अत्यंत विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए भी सकारात्मक दृष्टिकोण रखा। यह उनका नीलकंठ सरीखा व्यक्तित्व ही था, कि तमाम उत्पीड़न के बावजूद विश्व की प्रतिष्ठित संस्थाओं से उच्चतम डिग्रियाँ प्राप्त कर अपनी बुद्धि का लोहा मनवाया। बाबासाहेब के राष्ट्र के संविधान निर्माण में योगदान को सदैव आदर के साथ स्मरण किया जाएगा।

इसी प्रकार जोधपुर, सिरोही,ब्यावर, टोंक, अलवर, प्रतापगढ़ में राजकीय महाविद्यालयों की रुक्टा (राष्ट्रीय) की स्थानीय इकाइयों द्वारा अम्बेडकर जयंती पर बाबासाहेब के चित्र पर माल्यार्पण कर संकाय सदस्यों द्वारा श्रद्धांजलि दी गयी।

गतिविधि राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की सावंत समिति के साथ वार्ता

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) के प्रतिनिधिमण्डल की प्रदेशाध्यक्ष प्रहलाद शर्मा के नेतृत्व में सातवें वेतन आयोग की विसंगतियों के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा गठित सावंत समिति के बुलावे पर विस्तार से 25 अप्रैल 2018 को वार्ता हुई।

संगठन ने अध्यापक संवर्ग को केन्द्र के शिक्षकों के समान वेतनमान एवं पे-मैट्रिक्स दिये जाने पर संगठन का औचित्य रखते हुए कहा कि केन्द्र ने छठे वेतन आयोग की अभिशंसाओं के कारण शिक्षकों को विशेष वेतन दिया था, मगर राज्य सरकार ने केन्द्र के अनुरूप न देकर अन्याय किया है, जिससे अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। अतः राज्य के शिक्षक संवर्ग को केन्द्र के अनुरूप वेतनमान दिया जाना चाहिये। संगठन ने न्यूनतम वेतन केन्द्र के समान 18000 रुपये किये जाने एवं केन्द्र के समान ही पे-लेबल की संख्या 18 रखी जाने का औचित्य भी स्पष्ट किया।

समान ग्रेड-पे से बने पे लेबल का प्रारम्भिक वेतन समान रखे जाने, नियुक्ति तिथि से ही नियमित वेतन शृंखला दिये जाने, कार्मिकों द्वारा पुनर्विकल्प दिये जाने तथा राजपत्रित अधिकारियों को 9-18-27 वर्ष की सेवा पूर्ण करने पर ए.सी.पी. स्वीकृत किये जाने के संबंध में विस्तार से संगठन का पक्ष रखा।

2007 से 2009 के मध्य नियुक्त अध्यापक व प्रबोधक की वेतन विसंगति को दूर कर उनके साथ हो रहे अन्याय को समाप्त करने, वरिष्ठ अध्यापक की वेतन निर्धारण में हुई विसंगति को दूर कर न्यूनतम 16290 में वेतन निर्धारण करने तथा अनुसूची-5 में व्याख्या का वेतन 16290 करने के आदेश को वापस लेकर न्यूनतम 18750 ही रखने के संबंध में संगठन का दृष्टिकोण तथ्यों सहित समिति के समक्ष प्रस्तुत किया।

संगठन ने प्रयोगशाला सहायक एवं प्रयोगशाला सहायक से समायोजित एवं पदोन्नत अध्यापकों की वेतन विसंगति पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए इन्हें अध्यापक के समान ए.सी.पी. पर 4200-4800 एवं 5400 की ग्रेड-पे स्वीकृत किये जाने के तर्क देते हुए राज्य कर्मचारी की पेंशन प्राप्त करने की 28 वर्ष की सेवा के स्थान पर केन्द्र के समान 20 वर्ष की सेवा पर पूर्ण पेंशन दिये जाने तथा मृतक कर्मचारी के आश्रित को केन्द्र के समान 10 वर्ष तक पूर्ण पेंशन देने के सम्बन्ध में संगठन का पक्ष रखा।

समिति के अध्यक्ष डी.सी. सावंत ने सदस्यों सहित संगठन के पक्ष को ध्यानपूर्वक सुना तथा संगठन के दृष्टिकोण से परिचित होकर राज्य सरकार को उचित अभिशंसा करने का आश्वासन दिया।

भेदभाव को लेकर केकड़ी उपशाखा के शिक्षकों ने दिया धरना

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) उपशाखा केकड़ी द्वारा उपखण्ड कार्यालय में कार्यरत संगठन विशेष के शिक्षकों को राज्य सरकार के आदेशों की पालना में कार्यमुक्ति को लेकर एवं शिक्षकों को गैर शैक्षिक कार्यों से मुक्त करने हेतु महेश शर्मा के नेतृत्व में धरना दिया गया।

संगठन ने राजस्थान सरकार के संसदीय सचिव शत्रुघ्न गौतम एवं उपखण्ड अधिकारी नीरज मीणा के सकारात्मक सहयोग से उपखण्ड अधिकारी केकड़ी ने चुनाव कार्यालय में कार्यरत संगठन विशेष के छः शिक्षकों को सम्बन्धित विद्यालय के लिए 23 अप्रैल 2018 अपराह्न पश्चात् कार्यमुक्त किया। कार्यमुक्ति के आदेश प्राप्त होने के पश्चात संगठन का धरना समाप्त किया गया।

संगठन ने संसदीय सचिव शत्रुघ्न गौतम व उपखण्ड अधिकारी नीरज मीणा तथा आठ द्वितीय धरना प्रदर्शन में भाग लेने वाले सभी शिक्षक साथियों को धन्यवाद ज्ञापित किया। इस अवसर पर बिरदी चन्द वैष्णव, कैलाश चन्द जैन, राजेन्द्र सुजोडिया आदि उपस्थित रहे।

दिल्ली अध्यापक परिषद ने मुख्य सचिव को ज्ञापन दिया

दिल्ली के शिक्षकों की विभिन्न मांगों को लेकर दिल्ली अध्यापक परिषद का एक प्रतिनिधिमंडल अध्यक्ष, जयभगवान गोयल के नेतृत्व में दिल्ली सरकार के मुख्य सचिव अंशु प्रकाश से मिला। इस अवसर पर दिल्ली के शिक्षकों की विभिन्न मांगों को लेकर एक ज्ञापन उन्हें सौंपा गया, जिसमें छठे वेतन आयोग की विसंगतियों को दूर करने, निगम शिक्षकों को वेतन एवं अन्य भत्तों के भुगतान न हो पाने, शिक्षकों को बारह आकस्मिक अवकाश के साथ 10 अर्जित अवकाश और अर्धवैतनिक अवकाश भी दिए जाने, शिक्षक छात्र अनुपात 1:30 निश्चित किए जाने और सभी स्तर पर शिक्षकों को स्थाई किए जाने, गैर शैक्षणिक कार्यों को समाप्त कर शिक्षकों को केवल शिक्षण कार्य ही दिए जाने की मांग रखी गई। इसके साथ ही सहायता प्राप्त विद्यालयों हेतु कॉमन सीनियोरिटी बना कर संबंधित शिक्षकों की केंद्रीकृत नियुक्ति किए जाने एवं सहायता प्राप्त विद्यालयों को भी सरकारी विद्यालयों की तरह वी.के.एस. का लाभ दिए जाने आदि माँगें रखी गई। इन सभी माँगों के वैधानिक एवं सेवा नियम आधारित पक्ष भी मुख्य सचिव को स्पष्ट किए गए। अंशु प्रकाश ने चरणबद्ध रूप से एक-एक कर समस्याओं के संभव समाधान का भरोसा दिया। इस अवसर पर प्रतिनिधिमंडल में वेद प्रकाश, ज्ञानेंद्र मावी, दीपक गोस्वामी, राजेन्द्र प्रताप सिंह, नरेश कुमार शर्मा, दिनेश नागर, शिवेंद्र सिंह आदि शामिल रहे।

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की केकड़ी इकाई द्वारा डॉ. अम्बेडकर जयन्ती पर सेवानिवृत्त शिक्षक सम्मान

राष्ट्र हित में सद्भाव व ममभाव रखने की आवश्यकता - डॉ. गुप्ता

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) द्वारा विवेकानन्द रंगमंच उच्च माध्यमिक विद्यालय केकड़ी में डॉ. भीमराव अम्बेडकर जयन्ती तथा सेवानिवृत्त शिक्षक सम्मान समारोह में संसदीय सचिव शत्रुघ्न गौतम ने मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए कहा कि वर्तमान समय में बाबा साहब अम्बेडकर के सिद्धान्तों और अपेक्षाओं पर भारतवासियों को चलने की आवश्यकता है। गौतम ने वर्तमान केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित जन कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी देते हुए कहा कि केन्द्र व राज्य सरकार भेदभाव की राजनीति न करके सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय कार्य कर रही है। समारोह के मुख्य वक्ता डॉ. नारायण लाल गुप्ता, महामंत्री रुक्टा राष्ट्रीय ने डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन में उनके द्वारा किये संघर्षों के बाद निर्मित भारतीय संविधान की विशेषताओं को बताते हुए बाबा साहब के राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र भावना की जानकारी देते हुए उनके बताये मार्ग पर राष्ट्रहित में समभाव के साथ मम भाव रखने की आवश्यकता पर बल दिया तथा वर्ग एवं जाति भेद के कारण दूषित वातावरण को दूर करने हेतु शिक्षक वर्ग से सामान्य जन को शिक्षित करने की अपील की। समारोह की अध्यक्षता क्षेत्र प्रमुख, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ बजरंग प्रसाद मजेजी ने कहा कि शताब्दियों से चले आ रहे सुशासन को इस्लाम और अंग्रेजी शासकों ने द्वैष के बीज बोकर वर्ग भेद, वर्ण भेद तथा जातिगत ईर्ष्या में बाँट दिया जिसका नतीजा वर्तमान वातावरण है। मजेजी ने वेदों में निहित वाक्यों को बोलकर एक जाति, एक मत, एक देव का सिद्धान्त समझाते हुए बताया कि सभी भारतीय एक ईश्वर की सन्तान हैं। सबका मिलजुलकर बिना भेदभाव रहना ही राष्ट्र हित में है। समारोह में केकड़ी क्षेत्र के सेवानिवृत्त 35 शिक्षकों का श्रीफल, दुपट्टा, शॉल, स्मृति चिह्न देकर अतिथियों द्वारा सम्मान किया गया।

बिरदी चन्द वैष्णव ने समारोह का संचालन करते हुए शिक्षकों की गैर शैक्षिक कार्यों में ड्यूटी की पीड़ा एवं समस्याओं से संसदीय सचिव को अवगत कराया। उपशाखा अध्यक्ष कैलाश चन्द जैन ने अतिथियों का स्वागत तथा राजेन्द्र सुजेडिया उपशााखा मंत्री ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

जय नारायण गुप्ता, पूर्व उपसहायक निदेशक ने सेवानिवृत शिक्षकों की ओर से आभार व्यक्त करते हुए कहा कि उपशाखा केकड़ी द्वारा आयोजित कार्यक्रम बहुत सराहनीय है। सेवानिवृत्त शिक्षकों को जब भी शिक्षक संघ बुलाएगा मार्ग दर्शन देने उपस्थित होंगे। सहभोज के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

'शिक्षक प्रशिक्षणों की उपादेयता' विषय पर जयपुर में कार्यशाला

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर के तत्त्वावधान में शिक्षा संकुल स्थित सभागार में **'शिक्षक प्रशिक्षणों की उपादेयता'** विषय पर 22 अप्रैल को एक दिवसीय कार्यशाला सम्पन्न हुई।

कार्यशाला के उद्घाटन एवं प्रथम सत्र **'शिक्षक प्रशिक्षणों की वर्तमान दशा'** के मुख्य अतिथि उपनिदेशक (मा.शि.) जयपुर संभाग मुकेश शर्मा ने अपने उद्बोधन में प्रशिक्षण के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए शिक्षकों का आह्वान किया कि वे अपने कौशल से राजकीय विद्यालयों के महत्त्व को पुनर्स्थापित करें। उन्होंने शिक्षकों को अपनी जवाबदारी स्वयं तय करने की बात कही।

सत्र की अध्यक्षता कर रहे शैक्षिक मंथन संस्थान के उपाध्यक्ष बजरंग प्रसाद मजेजी ने कहा कि जितने भी आयोग शिक्षा में सुधार के लिए स्थापित किए गए उन सभी में प्रशिक्षण को आवश्यक करार बताया है। उन्होंने कहा कि शिक्षकों के मन में 'होम सिकनेस' घर कर गई है, जिसके कारण समाज से जुड़ाव कम हुआ है। उसे बढ़ाने की आवश्यकता है। सत्र के प्रारंभ में कार्यक्रम की प्रस्तावना शैक्षिक मंथन पत्रिका के सहसंपादक भरत शर्मा ने रखी।

द्वितीय सत्र **'प्रशिक्षणों की विषय वस्तु का पाठ्यक्रम में उपयोग'** के मुख्य अतिथि सीमेट गोनेर के एसोसिएट प्रोफेसर सत्यनारायण गौत्तम ने प्रशिक्षणों में पाठ्यक्रम की विषय वस्तु को शामिल करने पर जोर दिया। अध्यक्षता कर रहे सर्व शिक्षा अभियान में उपनिदेशक सुभाष कौशिक ने नेशनल अचीवमेंट सर्वे में राजस्थान के प्रथम क्रमांक पर रहने पर शिक्षकों को बधाई देते हुए कहा कि शिक्षकों को विद्यार्थियों में रुचि जाग्रत करनी होगी। जिससे वे उसका अभ्यास कर सकें और उससे उनमें सिद्धहस्तता आए।

तृतीय सत्र एवं समारोप के मुख्य अतिथि विशेषाधिकारी, शिक्षा बी.के. गुप्ता ने कहा कि मोड्यूल आवश्यकतानुसार होना चाहिए और पाठ्यक्रम शिक्षा, उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होना चाहिए।

अध्यक्षता कर रहे जिला शिक्षा अधिकारी (मा.शि.) जयपुर द्वितीय महेश गुप्ता ने कहा कि शिक्षकों को टी.एल.एम. का भरपूर उपयोग करने का आह्वान किया। कार्यशाला के प्रारम्भ में संयोजक बसन्त जिन्दल ने अतिथि परिचय कराया। अंत में नौरंग सहाय एवं आलोक चतुर्वेदी ने आभार व्यक्त किया।

AJKLTF Organizes Teachers' Conference

All Jammu, Kashmir and Ladakh Teachers' Federation (AJKLTF) organized a one-day teachers' conference on 22 April 2018 at Kishtwar, where the delegates flayed the State Government for its indifferent attitude against the teacher community in the State.

Dev Raj Thakur, State president, AJKLTF, inaugurated the conference. In the day-long session, speakers spoke on the present education scenario and the service conditions of the teaching community. The conference adopted several resolutions, which include transparent transfer policy, streamlining the salary of the teachers working under SSA/ RAMS, remove pay anomalies, etc.

In his address, Dev Raj Thakur said, "The motive of the conference was to bring thinkers, teachers and educationists on a common platform to deliberate upon different challenges that stand in the way of effective implementation of the education policy and to think of ways and means to strengthen the system as a whole, thereby improving the quality education at different levels in J&K"

Thakur demanded a transparent/rational transfer policy should be framed and implemented transparently to make the system work efficiently. He further asserted for making fresh DPC in the department on regular basis which has not been done in Jammu division since 2014 and fill all these vacant posts in the State without further delay and provisions should be made for PG Teachers/Masters to promote them as lecturers on time bound basis of their services and abolish "additional charges culture" in the department in the interest of the teaching as well as student community in the State.

He also emphasized creation of additional post of chief education officer in all the districts for smooth functioning of the department, besides stressing on filling all the vacant posts of masters/lecturers/ principles/ Zonal Education Officers/ Chief Education Officers in the State.

Rattan Sharma, State general secretary in his address stressed on the quality of education and for this he asked the teacher community to perform their role honestly. He said, "There is need to incorporate and sustain changes in the curriculum and implement evidence-based pedagogies into the teaching learning process".

Karnatak Rajya Madyamika Shikshak Sangh Organised state Executive Meeting

KRMSS organised state executive meeting in Bengluru on 30 March 2018. The meeting was attended by more than 70 teachers across the state. ABRSM General Secretary Shivanand Sindankera delivered keynote address. Highlight of keynote- many local level organisations cater to a variety of teacher issues different perspectives towards role of teachers organisations. Provide a platform for discussion for those teachers who crave to bring change in education structure. Motivate and convince teachers about their accountability towards society and students. To make teacher realise his/her role & potential in bringing desired changes in education. KRMSS Tresurer J.M. Jhosi presented a review of program and expenditure statement. Arun Shahapur working president Interacted with members on issues, perspective & solution. General Secretary Chidanand Patil delivered year plan & Workshops. Prof. K. Narahari delivered valedictory address & the newly Elected KRMSS President Sandeep Budihal-principal,Joint general secretary. Prof. Gangadharachari & State Mahila Pramukh Smt. Vasuki Bengaluru also particpated.

भावनगर इकाई ने मनाया बाबा साहब का जन्मदिन

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ उमराला, भावनगर, गुजरात इकाई ने डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जन्म दिवस को सामाजिक समरसता के रूप में मनाते हुए प्रदेश संगठन मंत्री भाविन भाई भट्ट ने बाबा साहब के आदर्शों को जीवन में उतारने की बात कही एवं आज प्रांतवाद, नस्लवाद, जातिवाद का जो बोल-बाला है उसे सामाजिक समरसता की शिक्षा ही उसे दूर कर सकती है। इस अवसर पर इकाई के कार्यकर्ताओं द्वारा दलित बस्तियों में जाकर उनके साथ भोजन ग्रहण किया एवं धोला ग्राम पंचायत के श्रमिक बंधुओं को उनके अच्छे कार्यों के लिए सम्मानित किया। सामाजिक समरसता जागरण के इस पुनीत कार्य में उमराला तहसील के कार्यकर्ता विजयभाई अहिर, दीपक भाई गलानी, अमृतभाई परमार एवं कई अन्य कार्यकर्ताओं ने सहयोग दिया।

ज्ञान ! चरित्र ! संस्कार !

श्री गुरुजी छात्रावास

उच्च माध्यमिक आदर्श विद्या मन्दिर,

आदर्श नगर, जयपुर दूरभाष : 0141-2615249, मो. 9799394656

(विद्या भारती से सम्बद्ध)

हमारी विशेषताएँ:-

1. प्रत्येक कक्ष में 4 छात्रों के रहने की व्यवस्था
2. पूर्णतया अनुशासित वातावरण
3 शुद्ध एवं उच्च गुणवत्तायुक्त भोजन
4. कमजोर छात्रों के लिए विशेष शिक्षण की व्यवस्था
5 खेलों के लिए विस्तृत मैदान एवं उपयुक्त खेल सामग्री
6. योग्य खेल प्रशिक्षक
7. रायफल शूटिंग रेंज
8. विषय विशेषज्ञों द्वारा मार्गदर्शन
9. नित्य योग की कक्षाएँ
10. साप्ताहिक विशेष भोजन की व्यवस्था
11. स्नेहपूर्ण पारिवारिक वातावरण
12. शैक्षिक उन्नयन हेतु विशेष कक्षाएँ
13. एन.सी.सी.

-: विशेष :-

कक्षा 10वीं में 90% अंक पर 10,000 रु की एवं 94% से अधिक पर 20,000 रु की शुल्क में छूट दी जायेगी।

2008 से संचालित छात्रावास के भैयाओं की उपलब्धियाँ:-

1. सिद्धार्थ चारण (R.A.S.)
2. नितेश गुप्ता (C.A)
3. राहुल खण्डेलवाल(C.A)
4. अंकित शर्मा (C.A)
5. रौनक जैन (C.A)
6. खींवराज भाटी (M.B.B.S)
7. तेजवीर गुर्जर (M.B.B.S)
8. वैंकटेश दासवानी (M.B.B.S)
9. जितेन्द्र शर्मा (M.B.B.S)
10. राजेन्द्र कलिया (M.B.B.S)
11. बाबूसिंह भाटी (M.B.B.S)
12. अमित खण्डेलवाल(M.D.S)
13. नवनीत सारण(M.B.B.S)
14. संजय खोलिया (B.A.M.S)
15. टीनू पोषवाल (M.B.B.S)

2008 से 2017 तक नेशनल स्कूल गेम्स में छात्रावास के भैयाओं की उपलब्धियाँ :-

1. सोमवीर सिंह फुटबॉल (2010)
2. शुभम चौधरी फुटबॉल (2010)
3. उमराव सिंह जूडो (2011) चतुर्थ स्थान
4. सचिन शेखावत पिस्टल शूटिंग (2013)
5. कोविद सोलोत पिस्टल शूटिंग (2014)
6. सौरभ खटाणा पिस्टल शूटिंग (2014)
7 . विकास जाट पिस्टल शूटिंग (2015)
8. यश दासवानी पिस्टल शूटिंग (2015)
9 . आशराम चौधरी रायफल शूटिंग (2015)
10. चैतन्य चौधरी पिस्टल शूटिंग (2015)
11. कोविद सोलोत बीच वालीबाल (2016)
12. टीनू पोसवाल बीच वालीबाल (2016)
13. विकास जाट TUG OF WAR (2017) रजत पदक
14. अनिल वैष्णव TUG OF WAR (2017) रजत पदक
15. विकास यादव TUG OF WAR (2017) रजत पदक
16. देवेन्द्र नेहरा TUG OF WAR (2017) रजत पदक
17. उद्देश्य गुर्जर TUG OF WAR (2017) कांस्य पदक
18. रवि चौधरी TUG OF WAR (2017) कांस्य पदक
19. पुष्पेन्द्र स्वामी TUG OF WAR (2017) कांस्य पदक
20. आशाराम चौधरी TUG OF WAR (2017) कांस्य पदक
21. कोविद सोलोत बीच वालीबाल (2017)
22. किशन चौधरी बीच वालीबाल (2017)
23. मोहन वर्मा बीच वालीबाल (2017)

छात्रावास शुल्क	56, 000 रूपये वार्षिक (2 किस्तों में देय)

अध्यक्ष
दामोदर दास मोदी

प्रधानाचार्य
रामानन्द चौधरी
(9799394656)